कहानी मेरी तुम्हारी

कल्पना गागडेकर
रोक्सी गागडेकर
आलोक गागडेकर
जीतेन्द्र इन्द्रेकर
अंकुर गारंगे
आतिष इन्द्रेकर
सुशील इन्द्रेकर

भाषा संशोधन प्रकाशन केंद्र
वडोदरा

Kahani Meri Tumhari

by Kalpana Gagdekar, Roxy Gagdekar, Alok Gagdekar, Jeetendra Indrekar, Ankur Garange, Atish Indrekar, Sushil Indrekar

प्रथम संस्करण : २०१२

टाईपिंग : कोकिला गोस्वामी, राजकुमार गांधी

पृष्ठ सज्जा और आवरण : निरज केंगे

प्रकाशक :
भाषा संशोधन प्रकाशन केंद्र
३७, श्रीनाथधाम सोसायटी
श्रीनगर सोसायटी के सामने
दिनेश मील के पीछे
वडोदरा ३९० ००७
फोन नं. : ०२६५-२३३१९६८, २३५३३४७
ईमेल : purvaprakash.publication@gmail.com
वेब साइट : www.bhasharesearch.org

मुद्रक : शिवम ऑफसेट, वडोदरा

This publication has received funding support from The Ford Foundation, New Delhi under the project 'Budhan Theatre's Cultural Programme'.

ये किताब समर्पित है

उन सभी लोगों को
जो छारा समाज की परिस्थितियों को समझते हैं और
जिन्होंने छारा समाज को
बदलने के लिए अपार कोशिशें की हैं

अनुक्रमणिका

सिर्फ साहित्य नहीं...

१९९८ में पहली बार मैं अहमदाबाद के छारानगर में गया था। साथ में श्रीमती महाश्वेता देवीजी थीं। वहाँ जाकर क्या कर पाऊँगा इसका मुझे कोई निश्चित अंदाजा नहीं था। पहली मुलाकात के बाद ही वहाँ बार-बार जाने का मन होने लगा। कुछ दिनों के बाद मैंने वहाँ के युवाओं के लिए छारानगर में एक छोटा पुस्तकालय बसाने का तय किया। पुस्तकालय में लड़के-लड़कियाँ आने लगे। बातें होने लगी। उन दिनों बंगाल में महाश्वेता देवीजी ने बूधन सबर नाम के आदिजातीय व्यक्ति की पुलीस हिरासत में हुई मौत का केस हाईकोर्ट में दर्ज किया था। जुलाई १९९८ में उसका फैसला हुआ। मुझे लगा की कोर्ट के इस निर्णय को ज़्यादा से ज़्यादा लोगों तक पहुँचाना चाहिए। इस उद्देश से मैंने 'बूधन' साप्ताहिक में पूरी संहिता प्रकाशित की । उसकी एक प्रति छारानगर के पुस्तकालय में भेजी । अंग्रेजी में 'लो एन्ड बीहोल्ड' कहते हैं उस तरह से चकाचौंध करनेवाली गति से वहाँ के बच्चों ने बूधन कोर्ट केस को नाट्य रूप दिया। नाट्य रूप बड़ा गजब का था।

छारानगर के दोस्त बहुत ही जल्दी मेरे साथ यायावर जनजातियों के अधिकार के आंदोलन में जुड़ गए। मेरा छारानगर आना-जाना बनता रहा। छारानगर पुस्तकालय में लोगों का आना-जाना बढ़ता रहा। यायावर जनजातीय आंदोलन चलता रहा। उसके विविध केन्द्र स्थानों में 'छारानगर पुस्तकालय' और 'बूधन थियेटर' महत्व के केन्द्र बनते गए । केवल अहमदाबाद और गुजरात से ही नहीं लेकिन देश-विदेश से भी साथी यहाँ आने लगे । आंन्दोलन से जुड़ते गए । एक समय बहुत वंचित और अभावग्रस्त रहे छारा समाज के दोस्त अब धीरे-धीरे देश और दुनिया के अन्य युवाओं के आशा स्थान बनने

लगे। साथ-साथ दमन भी आया। उसके प्रतिकार में संघर्ष करने के मौके आते रहे। 'छारानगर पुस्तकालय' से जुड़े दोस्तों की ज़िंदगियों में पहले से ही चिन्ता के पल कम नही थे। अब वो और भी बढ़ गए। ऐसे प्रसंगों का सामना करने की ताकत भी बढ़ती गयी। आज छारानगर में 'बूधन स्कूल ऑफ थियेटर आर्ट्स, जर्नलिज़म एन्ड मीडीया स्टडीज़' की निर्मिती हुई है। इसका इतिहास वहाँ के मेरे बहुत सारे साथियों की निजी ज़िंदगियों का एक अविभाज्य हिस्सा रहा है। साथ-साथ देश में चले यायावर जनजातीय आंदोलन का सबसे अहम हिस्सा बन चुका है। वह इतिहास इतिहासकारों के तर्क शुद्ध लेखन से नहीं लिखा जा सकता। वह केवल हर व्यक्ति के निजी आख्यानों से ही बनाया जा सकता है। मैं जानता हूँ कि यह आधा-अधूरा हो सकता है, लेकिन निश्चित है कि यह सार्थक और सच्चा इतिहास बनेगा।

छारानगर के मेरे दोस्त हर तरह से प्रशंसा के पात्र रहे हैं। छारानगर के दक्षिण बजरंगे कुछ समय पहले इंग्लैंड के 'लीड्स विश्वविद्यालय' में पढ़ने गए थे। मैंने खुद भी वहाँ साहित्य की पढ़ाई की थी। एक समय वहाँ अफ्रीका के चिनुआ अचेबे और वॉले सोयिंका भी रहे थे। अचेबे, सोयिंका, न्गुगी वगैरे अफ्रीका के साहित्य सर्जक, फ्रेंच भाषा में जिन्होंने क्रांतिशाली साहित्य दिया ऐसे विचारवंत लिओपोल्ड सेंघोर, दक्षिण अमरिका के इवान इल्लीच और पाउलो फ्रेइरे और अपने यहाँ के सफ़दर हाशमी की परंपरा में छारानगर के ये कलाकार अपने समाज और नाटक को एक नई दिशा दे रहे हैं। मुझे वेदना होती है कि देश के आज़ादी के साठ सालों के बाद भी बूधन जैसों को निर्ममता से मारा जाता है और दक्षिण, कल्पना, रोक्सी, आलोक, जितेन्द्र, अंकुर, सुशील, आतिश जैसों को अपनी पूरी ज़िंदगी लगाकर इस अन्याय के सामने लड़ना पड़ता है। 'कहानी मेरी तुम्हारी' साहित्य की किताब नहीं है, ये सिर्फ सच्चा जीवन है।

मेरी पाठकों से प्रार्थना है की वे इस लेखन को सहित्य समझकर ना पढ़ें, और पढ़ने के बाद न भूलें। ये जीवन दर्शन है। जिस समाज ने इस प्रकार का जीवन समाज के कुछ हिस्सों पर थोपा है, उस व्यवस्था को बदलने का यह पुस्तक एक न्यौता है।

गणेश देवी

नाटक : मेरी पहचान

कल्पना गागडेकर

मैं अपने माँ -बाप की लाड़ली बेटी हूँ । मेरे तीन भाई हैं जो मुझे हथेली पर रखते हैं । मेरी माँ मेरे जीवन संघर्ष में मेरी सबसे बड़ी प्रेरणा रही है । मेरे माँ -बाप ने मुझे कभी बेटी नहीं माना; उन्होंने हमेशा मुझे अपना बेटा माना है। मुझे हर वो खुशी दी, हर वो प्यार दिया, हर वो शिक्षा दी जो वो दे सकते थे । मेरा बचपन बड़े नाज़ें से गुजरा। मेरे बचपन में हम खुशियों भरी ज़िंदगी जीते थे । जीवन की शुरूआत कब हुई पता ही नहीं चला। कब बचपन खत्म हुआ, कब जवानी आई, कब शादी हुई, कब बच्चे हुए, समय का कुछ भी एहसास नहीं हुआ । जब मेरी शादी हुई तब मेरी उम्र सोलह साल की थी। शादी के एक साल बाद तरुण पैदा हुआ । तरुण पाँच-सात महीने का था तब छारानगर में एक लायब्रेरी की शुरूआत हुई। लायब्रेरी के साथ नाटक भी शुरू हुए । दक्षिण बजरंगे ने नाटक लिखने-बनाने की पहल की । मैं और मेरा पति, रोक्सी लायब्रेरी और नाट्य प्रवृत्तियों में जुड़ने लगे । नाटक तो मैं स्कूल में भी किया करती थी। डान्स क्लास में भी जाया करती थी। लेकिन शादी के बाद ये सब कुछ छोड़ दिया, पढ़ाई भी छोड़ दी । दसवीं में फ़ेल होने के बाद मैंने एक बार फिर परीक्षा देने के लिये फॉर्म भरा। लेकिन फिर पता चला कि मैं माँ बनने वाली हूँ। इसलिए मैंने परीक्षा नहीं दी । उसी समय दक्षिण और रोक्सी ने एक नया नाटक बनाने को सोचो। मैंने मज़ाक में दक्षिण से कहा, ‘मुझे भी नाटक में शामिल होना है। लेकिन तुम लोग मुझे नाटक में शामिल नहीं करोगे’। पर दक्षिण ने ‘हाँ’ कहा और मेरा एक ऑडीशन भी लिया । इस तरह मुझे छारानगर के ‘बूधन थियेटर’ ग्रूप नाटक में अभिनय करने का मौका मिला। उन दिनों ‘उठाईगीर’ नाम का नाटक बनाया जा रहा

था। कुछ दिन रिहर्सल हुए। फिर एक दिन डॉ.गणेश देवी और महाश्वेता देवीजी से बूधन सबर के जीवन के बारे में पता चला। फिर हम लोगों ने 'उठाईगीर' नाटक बंद किया और 'बूधन' की रिहर्सल शुरू कर दी। इस नाटक में मुझे बूधन सबर की पत्नी श्यामली का रोल मिला। पश्चिम बंगाल के पुरूलिया जिल्ले के बूधन सबर की पुलिस कस्टडी में हुई मौत के बारे में पेपर में पढ़ा । दक्षिण ने मुझे श्यामली का किरदार समझाया। मैंने तो उसे ठीक से समझा भी नहीं था। घर में काफी सारा काम रहता था । घर की उलझनों में मैं खो जाती । 'बूधन' के पहले प्रदर्शन के ठीक आठ दिन पहले ही मेरे ससुर, रसिकभाई थानिया को जेल हुइ थी । सारा परिवार-घर अस्त-व्यस्त हो गया था, जैसे मातम छा गया हो । ऐसे में मुझे और रोक्सी को 'बूधन' में अभिनय करना था। हमारा मन नहीं लगता था फिर भी हमने अपना दु:ख भूलाते हुऐ नाटक का रिहर्सल किया । उस वक्त दक्षिण को मेरे अभिनय में कुछ कमी नज़र आई। मैं मेरा किरदार ठीक से नहीं निभा पा रही थी। तब दक्षिण ने मुझे 'रुदाली' फिल्म का एक दृश्य बताया । वो दृश्य देखकर मैंने बहोत मेहनत की । बड़ी हिम्मत जुटाकर मैंने और रोक्सी ने उस बार 'बूधन' नाटक में अभिनय किया । बहोत सारे लोग, छारानगर से, कुछ बाहर के, महाश्वेता देवी, डॉ. गणेश देवी, सुरेखा ताई, इतने सारे लोगों के सामने जब हमने अभिनय किया तो डर सा लगा। जो दक्षिण ने संवाद दिए थे वो मुझे रोते-रोते बूधन की लाश की ओर जाते वक्त बोलने थे। मैंने उसी तरह वो दृश्य किया । हमारी नाटक मंडली में मेरी उम्र से बड़े भी कई लोग थे जो इस नाटक में अभिनय कर रहे थे। उनमें से एक तो मेरे मौसा ससुर ही थे । मेरा दृश्य खत्म हुआ तो सब मूक बने मुझे देख रहे थे । मैं डर गई। मुझे लगा कि शायद मैंने कोई गलती कर दी है। लेकिन फिर मुझे घबराए हुए देख, सभी लोगों ने इतनी जोर से तालियाँ बजायीं कि मेरी आँखों से आँसू निकल आए। तालियों की गूँज सुनकर मुझमें थोड़ा हौसला आया । मुझे प्रतीत हुआ कि मैं भी कुछ कर सकती हूँ। इस अभिनय के बाद शायद मैं श्यामली के किरदार को थोड़ा-थोड़ा समझने लगी थी ।

उसके बाद हमने कई जगह 'बूधन' के शो किए। आज तक 'बूधन' इतनी बार परफॉर्म हुआ है कि अब गिनना भी मुश्किल है। बस, हम नाटक करते गए, करते गए।

इधर, तरुण बड़ा होने लगा था। कई बार मुझे तरुण को रिर्हसल के वक्त साथ ले जाना पड़ता था। घर के हालात भी बिगड़ते गये। आर्थिक मुश्किलें बहोत आईं। रोक्सी की पढ़ाई चल रही थी इसलिए घर की सारी जिम्मेदारी मेरी सास पर आ गई थी। तब रोक्सी के अलावा घर में कमानेवाला और कोई नहीं था। इसलिए मेरी सास को ही सब कुछ करना पड़ता था। घर शराब की भट्टी से ही चलता था। सास भट्टी निकालती थी और मैं जगह-जगह शराब देने जाया करती थी। हमने शराब के साथ-साथ पकौड़े बनाकर बेचना शुरू किया। सब्ज़ी भी बेचने लगे। सुबह सब्ज़ी बेचते, दिन भर शराब निकालते और शाम को पकौड़े बेचते।

इस दौरान नाटक जारी रहा था। जब भी कहीं शो होता तो सात आठ दिन पहले रिहर्सल शुरू करते। मैं दिन भर घर के सारे काम खत्म करके रात को रिहर्सल के लिए जाया करती थी। हमारे पास रिहर्सल के लिए उपयुक्त जगह नहीं थी। हम हमारी छत पर ही रिहर्सल करते थे। हम ने हर मौसम में छत पर ही रिहर्सल की है। धूप, छाँव, बारिश, हर मौसम का लुफ्त लेते हुए हमने नाटक जारी रखा।

'बूधन' के बाद हमने अन्य कई नाटक बनाये। जैसे 'तनुजा दीपक पवार', 'पीन्याहरी काले कि मौत', बुलडोज़र, उलगुलान। समय के साथ 'बूधन थियेटर' के लगभग सभी कलाकारों की पढ़ाई खत्म होती गई। जिन्हें नौकरी मिलती, वो 'बूधन थियेटर' छोड़ते गये। कुछ पैसे न मिलने की वजह से भी थियेटर छोड़ते गये। हमारा सारा ग्रूप बिखरता गया। लेकिन हमारे साथ नए लोग भी जुड़ते गये। कई बार तो बाहर नाटक करने जाना होता तो मेरे और रोक्सी के पास बिल्कुल पैसे नहीं होते। कभी किसी से पैसे उधार लेते तो कभी खाली जेब ही निकल पड़ते। मेरे ससुर जेल से छुटकर आ गये। घर के हालात धीरे-धीरे सुधरने लगे। ससुर के आने के बाद मुझे लगा कि मैं अब

नाटक नहीं कर पाऊँगी। लेकिन मेरी सोच गलत साबित हुई। ससुर ने नाटक करने से मुझे मना नहीं किया। बल्कि, वो तो मुझे बिठाकर नाटक के बारे में समझाते किस तरह सवांद पर ध्यान देना, रोने का अभिनय करना, दर्द भरी आवाज़ निकालना।

शुरूआत के दिनों में सभी ने मेरा बहोत साथ दिया। सास, ससुर, रोक्सी, सभी ने। लेकिन जब तरुण थोड़ा बड़ा होने लगा और मैं उसे घर पर छोड़कर नाटक करने जाती तो घरवालों का विरोध शुरू हुआ। उन्होंने मुझे नाटक करने से मना कर दिया। लेकिन रोक्सी ने मेरा साथ दिया। उसने मुझे कभी नाटक नहीं छोड़ने दिया। मैंने सबके विरोध के बावजूद नाटक जारी रखा। फिर ससुर की बीमारियाँ शुरू हुईं। बीमार वो पहले से ही थे। उन्हें डायबिटीस थी। इसकी वजह से उनकी किडनियों ने काम करना बंद कर दिया था। ससुर बीमार रहते इसलिए वकालत करने कोर्ट भी नहीं जा सकते थे। मैं वही रोज़ मर्रा की ज़िंदगी, वही शराब की भट्टी, सब्ज़ी, पकौड़े, और आर्थिक कठिनाइयों से जूझने में सिमट गयी। हमारे पास ससुर की दवाइयों के लिए भी पैसे नहीं होते थे। उनकी दवाइयों के लिए हम लोग उनके एडवकेट ग्रूप से पैसे इकट्ठे करते। जब किडनी फेल होने का उन्हें पता चला तो अंदर ही अंदर उनकी बेटी की शादी की चिन्ता उन्हें खाए जाने लगी। बेटी की शादी की उम्र तो हो गयी थी लेकिन पैसे न होने की वजह से वो उसकी शादी नहीं कर पा रहे थे। हमें कुछ समझ नहीं आ रहा था कि क्या करें। हमने सोचा कि पहले ससुर का इलाज करवाना चाहिए। इसलिए हमने कर्जा लेकर उनका इलाज करवाया। ससुर की इच्छा थी कि उनके जीते जी बेटी की शादी हो जाये। इसलिए हमने मेरी ननंद की शादी के लिये और कर्जा लिया और उसकी शादी की तैयारियाँ शुरू कर दीं। घर में एक तरफ शादी का माहौल था और दूसरी तरफ ससुर की बिमारी। इस हालात के बीच शादी तो हो गयी। लेकिन ससुर ज्यादा दिन तक जिंदा नहीं रह सके। किडनी फेल होने के आठ-नौ महीनों में ही उनका देहान्त हो गया। घर में मातम छा गया। हमारी जीने की सारी उम्मीदें जैसे खत्म हो गयीं। जब ससुर अच्छे-भले थे

तब वकालत के साथ-साथ घर चलाने के लिए कुछ गैर कानूनी काम में भी शामिल हो गए थे। इसकी वजह से भी हम पर बहोत कर्जा लग गया था। मेरे सारे सोने के जेवर बिक गए। ससुर की बीमारी और ननंद की शादी में पूरा परिवार कर्ज से दब गया। और, ससुर के जाने का गम। ससुर के देहान्त के बीस ही दिनों बाद हमें नाटक करना था। एक तो घर में इतनी चिन्ता और दूसरी तरफ नाटक लेकिन सब कुछ थोड़ी देर के लिये भुलाकर रोक्सी और मैंने नाटक किया। तब रोक्सी की पढ़ाई खत्म हो चुकी थी। घर के हालात को देख रोक्सी ने नौकरी करने की सोची। उसी दौरान मल्लिका साराभाई ने 'तारा'टी.वी. चैनल शुरू किया। रोक्सी और दक्षिण को तारा में काम मिल गया। रोक्सी की तन्ख़ाह छः हज़ार रुपये थी। रोक्सी की सारी तन्ख़ाह व्याज देने में चली जाती। मुझे भी थोड़ा बहोत अभिनय का काम मिलने लगा। जिससे मैं भी थोड़े बहोत पैसे कमा लेती। इस तरह कर्जा चुकाने के लिये हम सब दिन-रात मेहनत करते। रोक्सी नौकरी करता, मैं और सास मिलकर थोड़ा बहोत शराब-सब्जी वगैरे बेचते और मैं टी.वी. सीरीयल में काम भी करती। अब तक मेरे देवर, आलोक की भी शादी की उम्र हो गई थी। लेकिन हमारा कर्जा देख कोई भी परिवार हमें अपनी लड़की देने को राज़ी न था। पर आलोक इस बात से कभी दु:खी नहीं हुआ। उसने नाटक जारी रखा। उसे कभी-कभी 'तारा चैनल' में थोड़ा बहोंत काम मिला जाता। मैंने 'तारा चैनल' में मिली 'जवनीका' सीरीयल में पहली बार कैमरे का सामना किया। मुझे तब टी. वी.मीडिया के बारे में अधिक जानकारी नहीं थी। रोक्सी मुझे समझाता था। एक साल बाद 'तारा चैनल' बंद हो गया। अब? घर में फिर संघर्ष शुरू हुआ। पेट भरने के साथ-साथ व्याज भी पूरा करना था। कुछ महीनों तक व्याज न देने की वजह से हमारा कर्जा और बढ़ गया। इन कठिन हालातों में रोक्सी ने पत्रकारिता का एक साल का कोर्स किया। कोर्स खत्म करने के बाद उसे ' ई-टीवी' नाम के गुजराती न्यूज़ चैनल में नौकरी मिली। रोक्सी हैदराबाद चला गया। अब मुझे नाटक करने अकेले जाना पड़ता था। लेकिन समाज की सोच मेरे लिये बुरी साबित हुई। नाटक करने की वज़ह से समाज में मेरी

बहोत बदनामी हुई। घरवालों ने यातना शुरू की। उन्होंने मुझे नाटक करने से साफ इन्कार कर दिया। मेरा साथ देने वाला रोक्सी भी अब मेरे पास नहीं था। मेरे लिये नाटक करना भी ज़रूरी था और घरवालों की बात मानना भी आवश्यक था। दोनों में से किसी एक को चुनना था। मैंने दिल पर पत्थर रखकर नाटक नहीं करने का फैसला किया। इस दौरान रोक्सी को हैदराबाद अच्छा नहीं लगा और वो नौकरी छोड़कर छारानगर वापिस आ गया। जब उसे पता चला कि मैंने नाटक छोड़ दिया है तो उसने मुझे बहोत डाँटा। वो घरवालों पर भी बहोत बिगड़ा। मैंने फिर एक बार घरवालों के विरोध के बावजूद नाटक शुरू किया। मुझ में हिम्मत आयी कि जब तक रोक्सी मेरे साथ है, मैं हर मुसीबत का सामना करूँगी।

कुछ समय बाद रोक्सी को 'भाषा संशोधन प्रकाशन केन्द्र,' बड़ौदा में नौकरी मिली। वो फिर एक बार मुझ से अलग हुआ। एक बार फिर मैंने उन्हीं मुसीबतों का सामना किया। रोक्सी छः महींने तक बड़ौदा में रहा। इसके बाद उसे अहमदाबाद में मल्लिका साराभाई की मदद से नौकरी मिली, महज़ पैंतीस सौ रूपए कि तन्ख़ाह पर। वहाँ रोक्सी ने छः महीने काम किया। फिर किस्मत का दरवाजा खुला और उसे 'गुजरात समाचार' समाचार पत्र में काम मिला। यहाँ उसकी तन्ख़ाह छियालीस सौ रुपये थी। धीरे-धीरे रोक्सी की तन्ख़ाह बढ़कर सात हज़ार रुपये हो गयी। थोड़ा बहोत कर्जा भी कम हुआ। आलोक की शादी हुई। हमने धीरे-धीरे शराब बेचना बंद किया। रोक्सी की तन्ख़ाह पर ही घर चल जाता। कभी रूखा-सूखा खाते तो कभी पकवान। लेकिन हम सबकी एकता बनी रही। पर अब जब घर पर सब कुछ ठीक होने लगा तो समाज से हमारी ये अच्छी परिस्थिति देखी नहीं गई। लोगों ने घरवालों को भड़काना शुरू किया कि वो अपनी बहू को नाटक करने क्यों भेजते हैं। हमारे घरवाले बड़े भोले हैं। लोगों की बातों में आकर उन्होंने एक बार फिर मुझे नाटक करने से रोका। और एक बार फिर घरवालों के विरोध में मैंने नाटक जारी रखा। अब तो तरुण भी बड़ा हो गया था। समझदार हो गया था। वो स्कूल जाने लगा था और खुद नाटक में शामिल हो गया था।

वो करीबन छः साल का होगा । जब हमने दूसरे बच्चे के बारे में सोचा । उस दौरान आलोक को ' राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय' में प्रवेश मिला । उसी समय देवी सर ने हमें 'भोमा' नाटक बनाने को कहा । आलोक ने ये जिम्मेदारी ली और 'भोमा' की तैयारी शुरू की । मुझे भी इस नाटक में लिया गया। उन दिनों मैं पेट से थी, कुछ पाँच महीने से । 'भोमा' नाटक बहोत कम समय में बनाना था । ये बहोत मुश्किल था क्योंकि भोमा की सिक्रप्ट बहोत कठिन थी । आलोक नाटक की शुरूआत करवा कर दिल्ली चला गया, फिर दक्षिण को ये नाटक पूरा करना था । लेकिन कुछ ही दिनों बाद दक्षिण को तड़ीपार किया गया । अब वो कुबेरनगर से नरोडा नहीं आ सकता था। इसलिए हमें रिहर्सल के लिये कृष्णानगर जाना पड़ता था जहाँ दक्षिण किराये के मकान में रहा था । एक तो नाटक के बिगड़ते हालात, समाज का बहिष्कार, नाटक की रिहर्सल के लिये दूर प्रवास करना और ऊपर से मेरा पेट से रहना । इसके अलावा घरवालों के ताने। मेरी तबीयत भी उन दिनों खराब रहती थी । मेरी कमजोरी में ये सब से जूझना मुश्किल था । लेकिन रोक्सी बार-बार मेरी हिम्मत को हौसला देता।

'भोमा' नाटक तैयार हुआ । मुझे छटां महीना चल रहा था । बारिश का मौसम था । हमारा पहिला परफॉर्मेन्स था 'धीरूभाई अंबानी इंस्टीट्यूटा ऑफ इन्फोरमेशन और कम्यूनिकेशन टेक्नोलोजी' में जहाँ ओपन एयर थियेटर है। 'भोमा' के परफॉर्मेन्स के अवसर पर हमने हमारे ग्रूप को नाम दियाः 'बुधन थियेटर'। बूधन हम सब की ज़िंदगी में बस गया था । हम में से हर कोई अपने आप में बूधन की छवि देखता था। जब हमारा नाटक शुरू हुआ तो थोड़ी-थोड़ी बारिश आरंभ हुई। सभी कलाकार घबराने लगे क्योंकि मैं पेट से थी। सारा फर्श बारिश से गीला हो गया था । मेरी कई मूवमेन्ट भागदौड़ वाली थी। गिरने का डर था । दक्षिण ने इशारा किया कि हम नाटक बंद कर दें वरना मैं गिर जाऊँगी । लेकिन मैंने दक्षिण को इशारे से कहा, 'तुम चिन्ता मत करो, मैं संभाल लूँगी'। नाटक के दौरान मैं दो- तीन बार फिसलने से भी बची। मुझे बेहद डर लग रहा था कि कहीं मैं संभल न पाई और गिर गई तो?

मैंने अपनी गति धीमी कर दी । मेरा पेट लोगों को साफ नज़र आ रहा था । बारिश तेज हो गई, संभलना और भी मुश्किल हो गया था। फिर भी भगवान को भजते, नाटक को खत्म किया । नाटक के खत्म होते ही बारिश भी थम गई, पता नहीं क्यों? उस समय महसूस हुआ जैसे भगवान भी मेरी परीक्षा ले रहा है । देवी सर ने भी मुझे सराहा। लेकिन मेरा मन कुछ व्याकुल हो उठा था। मैं सोचने लगी कि आखिर मैं क्यों नाटक के लिये इतनी पागल हूँ? क्यों मैं इतनी पागल हो गई थी कि मैंने अपने होने वाले बच्चे की भी परवाह नहीं की, ना ही शर्म की पेट से होने की? मैं अब भी जब उन दिनों को याद करती हूँ तो अपने आप से किए उन सवालों का जवाब आज भी मेरे पास नहीं मिलता है।

'भोमा' नाटक करने के बाद हमें फिर एक बार 'बूधन' नाटक सापुतारा में करना था । इस बार तरुण भी नाटक में भाग ले रहा था । मेरा बहोत मन हुआ कि मैं भी सापुतारा जाऊँ। लेकिन दक्षिण ने साफ इन्कार कर दिया क्योंकि उन दिनों मैं आठ महीने पेट से थी और बस का सफ़र था । सापुतारा का रास्ता भी बहोत खराब है । मैंने फिर भी जाने की जिद की। दक्षिण नहीं माना। उसने चेतना को श्यामली के रोल के लिये तैयार किया । लेकिन मैंने फिर भी हार नहीं मानी। अपने डॉक्टर से सलाह लेकर मैंने दक्षिण को बताया कि मैं सापुतारा आ रही हूँ, कि मेरे बदले चेतना नाटक करे इसका मुझे कोई गम नहीं है लेकिन मैं आना चाहती हूँ। आखिर दक्षिण ने हार मानी और मुझे साथ ले जाने के लिये तैयार हुआ। मुझसे कहा, 'तुम और चेतना दोनों साथ चलोगे। अगर तुम्हें कोई तकलीफ होती है तो चेतना परफॉर्म करेगी, वरना तुम करना'। हम लोगों ने नाटक की तैयारी की । मैं और तरुण दोनों सापुतारा के लिये रवाना हुए । मुझे बस में कोई तकलीफ नहीं हुई । दक्षिण और चेतना ने मेरा बहोत ख्याल रखा । सापुतारा में हमें राष्ट्रपति, अब्दुल कलाम के सामने परफॉर्म करना था । हमें जहाँ नाटक करना था वो जगह हमारे ठहराव की जगह से तकरीबन दो या तीन किलोमीटर दूर थी । वहाँ तक जाने के लिये कोई वाहन नहीं था । हम लोग डीनोटीफाइड और घुमन्तु जनजातियों

का बहोत बड़ा ग्रूप लेकर गये थे। हमें उस स्थल पर सिर्फ पंद्रह-बीस मिनट में पहोंचना था । हम लोग भागते-भागते निकले। रास्ता बहोत खराब था । दक्षिण और चेतना मुझे संभालने लगे । मेरे लिये भागना बहोत मुश्किल था और पहोंचना जरूरी था । मुझे लगा जैसे एक बार फिर भगवान ने मेरी परीक्षा ली है। बड़ी मुश्किल से हाँफते-हाँफते हम लोग वहाँ पहोंचे । मेरी तबीयत भी थोड़ी बिगड़ गयी थी । देवी सर ने आम जनता के सामने हमसे नाटक करवाया । मेरी तबीयत ठीक न होने कि वजह से मैंने उस दिन अभिनय नहीं किया । चेतना ने श्यामली का रोल बखूबी निभाया ।

सापुतारा में भाग-दौड़ की वजह से मेरी प्रसुति कुछ दिनों जल्दी हुई। मैं एक बार फिर ११ दिसम्बर २००३ में माँ बनी । मेरी कोख से बेटी का जन्म हुआ । नौ महीने पूरे न होने के कारण और मेरी कमज़ोरी की वजह से हमारी बेटी बहोत कमज़ोर पैदा हुई । मैने सात सालों तक कोख बंद रखी थी इसलिए उसके जन्म के तुंरत बाद ही मेरी तबीयत बिगड़ गई । बहोत खून बहने लगा। मैं बेहोश हो गई । डॉक्टर ने जवाब दे दिया था कि अगर खून का बहना बंद नही हुआ तो मै मर जाऊँगी । मुझे ये सब कुछ पता नहीं था । हॉस्पिटल में सभी घरवाले रोने लगे थे। बड़ी मन्नतों के बाद रात को साढे बारह बजे मेरा खून बहना बंद हुआ । डॉक्टर ने बताया कि मुझे खुन की जरूरत है। इतनी रात गए कौन सी ब्लड बैंक खुली होती? रोक्सी ने दक्षिण को संपर्क किया। दक्षिण उस समय किसी थियेटर में फिल्म देख रहा था, तुरंत वहाँ से आया। दक्षिण और रोक्सी ने मुझे अपना खून दिया। तब जाकर अगले दिन सुबह साढे आठ बजे मुझे होश आया। मैंने अपनी बच्ची को सीने से लगाया। सब लोग मुझे होश में देख रोने लगे । सारी बात मुझे बतायी । मेरी आँखें भर आयीं । मेरी बच्ची पर मेरी ममता और बढ़ गई, उसे सीने से लगाकर मैं भी रोने लगी। दो दिनों बाद मुझे हॉस्पिटल से छुट्टी मिली। हॉस्पिटल का बिल बारह हजार रुपए आया। इतने पैसे हम कहाँ से लाते? मेरी माँ आई हुई थी। मेरी डिलीवरी के लिये उसने पैसे दिए, थोड़े रोक्सी ने ऑफिस से उधार लिये और बाकी के पैसे हमने डॉक्टर से माफ करवाये । बच्ची के जन्म और मुझे

मिले नये जीवन से घर में खुशहाली छा गई। पैसे तो नहीं थे। पर हम लोगों ने बिना पैसों के ही खुश रहना सीख लिया था। मेरे घर लौटे सिर्फ दो ही दिन हुए थे कि हमारी खुशियों पर पानी फिर गया। बच्ची को पीलिया हो गया। पीलिया काफी फैल चुका था। डॉक्टर ने कहा कि उसे इन्क्यूबेटर में रखना पड़ेगा। इतनी छोटी सी बच्ची जिसे दुनिया में आये सिर्फ दो ही दिन हुए थे, जब उसे इन्क्युबेटर में आँखों पर पट्टी बाँध के रखा तब मेरी ममता उभर आयी। मैं बहोत रोने लगी। वो दिन मेरे लिये बड़ा ही दर्दनाक था। मेरी आँखों से आँसू बंद नहीं हो रहे थे। मैंने दो दिन तक खाना नहीं खाया। डॉक्टर ने मुझे सिर्फ उबले हुए मूंग खाने को कहा था। सिर्फ मूंग खाने से मेरे छाती से दूध भी बंद हो गया। दस दिन तक मेरी बच्ची मेरे दूध के बिना बिलखती रही। मैं कुछ और खा भी नहीं सकती थी। अगर खाती तो बच्ची को पीलिया बढ़ जाता, और नहीं खाती तो दूध नहीं आता था। बच्ची की हालत मुझसे देखी नहीं गई। छारानगर की दूसरी औरतों को बुलाकर में उसे दूध पिलाती। तब जाकर मेरी बच्ची चैन से सो पाती। मैं अपने आपको अभागन मानने लगी। इतने सालों के बाद मेरी बेटी का जन्म हुआ था पर मैं उसे अपना दूध भी नहीं पिला सकती थी। दस दिनों बाद जब बेटी को घर लाये तब मैंने घी, दूध और अन्य खाना खाना शुरू किया। मेरी छाती में दूध आया और मैंने अपनी बेटी को दूध पिलाया। तब जाकर मुझे चैन आया।

इस दौर से गुजरने के बाद हमें बूधन नाटक करने वर्ल्ड शोश्यल फोरम में मुंबई जाना था। मेरी बेटी तब महज़ बीस-पच्चीस दिन की थी। फिर भी मैं नाटक करने मुंबई गयी। घरवालों ने बहोत मना किया कि अभी बेटी छोटी है, बीमार है, मत जाओ। लेकिन मैंने एक न सुनी। मैं अपनी पच्चीस दिन की बेटी को लेकर मुंबई, बस से गयी। उन दिनों मुंबई में बड़ी गर्मी थी। वहाँ लाखों लोग आये थे। मैंने नाटक किया। रोक्सी भी मेरे साथ आया था। नाटक के दौरान हमारी बेटी को रोक्सी ने संभाला। एक तरफ नाटक चल रहा था और दूसरी तरफ मेरी बेटी भूख और गर्मी से बड़े जोरों से रो रही थी। नाटक खत्म होते ही मैंने उसे अपना दूध पिलाया। फिर उसके सारे कपड़े

उतार दिए और उसे एक गीले कपड़े से साफ किया। तब जाकर वो शांत हुई। उस दौरान भाषा केन्द्र में अरुणा जोशी थीं। वो भी मुंबई आयी थीं। जब उन्होंने देखा कि मेरी बेटी बहोत रो रही है तो उन्होंने मुझे बहोत डाँटा और कहा, 'इतनी छोटी सी बच्ची को लेकर तुम यहाँ क्यों आई'? अब तक हमने अपनी बेटी का नाम नहीं रखा था । बहोत से नाम सोचे लेकिन कोई पसंद नहीं आया । हम लोगों ने जब सुना कि मुंबई नाटक करने जाना है तो सोचा कि वहीं देवी सर से उसका नाम रखवायेंगे। नाटक खत्म होने के बाद हम ने देवी सर से कहा, 'हम आपसे हमारी बेटी का नाम रखवाना चाहते हैं'। देवीसर ने कुछ देर सोचा और फिर कहा, 'तुम हमेशा नाटक में संवाद बोलते हो ना, 'क्रान्ति', तो आज से इसका नाम क्रान्ति हैं'। इस प्रकार लाखों लोगों के सामने मेरी बेटी का नाम क्रांति घोषित हुआ । वो मेरे लिये बहोत यादगार पल है । इतने लोगों के सामने मेरी बेटी का नाम रखा गया । मुझे बहोत अच्छा लगा । वो दिन मैं कभी नहीं भूल सकती।

क्रांन्ति जब तीन साल की हुई तब मैंने टी.व्ही. मीडिया में कदम रखा। धीरे-धीरे मुझे गुजराती धार्मिक अल्बमों में काम मिलने लगा । मेरा नए-नए लोगों से मिलना हुआ । चारों तरफ बदनामी, घरवालों का आक्रोश था । बस, एक रोक्सी के सहारे ही मैं आगे बढ़ती गई। पर इस तरह कि बदनामियों से मैं और सभी घरवाले परेशान रहते थे। उस समय आलोक की पत्नी को उसके दहेज में एक घर मिला था जो उसके घर के झगडों में फंसा था । आलोक ने बड़े संघर्ष के बाद उस घर के पैसे वसूल किये । करीबन दो लाख का जुगाड कर छारानगर से दूर, सिटी एरिया में उसने घर लिया । हम लोगों ने फैसला लिया कि आलोक मुंबई बस जाए और हम सब नए घर में चले जायें । फिर एक नाटक आया गांधीनगर में। बहोत सोचने के बाद मैंने नाटक छोड़ने का फैसला लिया । सोचा कि ये आखरी शो करके अपनी निवृत्ति घोषित कर दूँगी । घर पर बताये बगैर ही मैं ये आखरी नाटक करने गई । उस वक्त घर में कोई नहीं था। सास छारानगर गयी थी । वो शाम को घर लौटने वाली थी । दिल पर पत्थर रखकर नाटक खत्म होने के बाद मैंने अपनी निवृत्ति घोषित

की। मेरी आँखों से आँसू रुक नहीं रहे थे। मैं सबसे गले मिल-मिलकर रोने लगी। सभी साथी बड़े दु:खी हुए। पूछने लगे कि मैं नाटक क्यों छोड़ रही हूँ? लेकिन मैं उन्हें सच नहीं बता पायी। फिर दक्षिण ने मुझ से अकेले में पूछा। मैं उसे कुछ बता नहीं पायी। मैंने कह दिया कि घर में कुछ कठिनाई होने की वज़ह से मैं अब नाटक नहीं कर पाऊँगी। उसने मुझे समझाया की घर के हालात जब तक ठीक नहीं होते, मैं नाटक न करूँ। लेकिन बाद में तो मुझे नाटक करना ही होगा, क्योंकि बुधन थियेटर के पास कोई दूसरी स्त्री कलाकार नहीं है। बाद में दक्षिण ने मुझे घर छोड़ा। अब तक रोक्सी को ये सब कुछ पता नहीं था। मैंने उसे पूछे बगैर ही नाटक छोड़ने का फैसला लिया था। मम्मी घर आईं तो पता चला कि मैं घर पर नहीं थी, नाटक करने गयी थी। मेरी ननंद हमारे घर दो दिनों के लिए रहने आई थी। घर में तमाशा खड़ा हो गया। जब मैं घर पहुँची तो बहोत झगड़ा हुआ। रोक्सी आया तब उसे माजरा पता चला। वो बहोत गुस्सा हुआ। झगड़े के दौरान घरवालो ने इतने इल्जाम मुझ पर लगाये थे कि मैं एक जिन्दा लाश बन चुकी थी। बस आँखों से गंगा की तरह पानी बह रहा था। रोक्सी ने घरवालों के साथ बहोत झगड़ा किया। वो हमेशा मेरे पक्ष में ही रहा है। झगड़े के दौरान मुझे कुछ ऐसी बातें सुनायी गयीं जिनके बारे में मैं लिख नहीं सकती। मैं रात भर रोती रही। दिल भी इतना दु:खी हुआ कि मेरी तबीयत खराब हो गयी। मैं बेहोश हो गयी। रोक्सी मुझे डॉक्टर के पास ले गया। लेकिन तब रात के दो बजे रहे थे। कोई डॉक्टर नहीं मिला। हमारे घर के थोड़े करीब एक बहोत बड़ा अस्पताल है, 'शाल हॉस्पीटल'। रोक्सी मुझे वहाँ ले गया। वहाँ भी डॉक्टर नहीं थे। अत्यावश्यक स्थिति में डॉक्टर को बुलाया गया। डॉक्टर ने जाँच की। कार्डीयोग्राम निकलवाया। पता चला कि मुझे छोटा दिल का दौरा पड़ा था। मेरे पास एक स्त्री का रहना ज़रूरी था। रोक्सी भागा-भागा मेरी सास को लेने घर गया। लेकिन रास्ते में उसके कदम रुक गये। फिर वहाँ से मुझे एम्बूलेन्स में दूसरे अस्पताल में भरती किया गया। रात भर ऑक्सीजन पर रखा। मेरी माँ को रोक्सी ने फोन करके बुलाया क्योंकि मेरे पास दिन में रहनेवाला कोई नहीं

था। घर के अन्य सभ्यों को पता चला पर तबियत पूछने तक कोई नहीं आया। पाँच दिन अस्पताल में रहने के बाद मुझे घर ले जाना था । जब सास को पता चला कि मैं घर आ रही हूँ तो वो घर छोड़कर चली गयी। उन्होंने शर्त रखी कि मैं नाटक और टी.व्ही-मीडिया में काम करना छोड़ दूँ तो ही वो घर लौटेगी। रोक्सी गुस्से से लाल हो गया। उसे इतना गुस्सा आया कि उसकी नाक से खून बहने लगा। उसका ब्लड़ प्रेशर बढ़ गया और उसी दिन से रोक्सी को बल्ड प्रेशर की समस्या लगी। पूरा परिवार बिखर चुका था। घर के हालात संभालने और उनको घर वापस लाने के लिए रोक्सी ने सास की हर शर्त को मान लिया। सास घर आ गयी। डॉक्टर ने मुझे आराम करने और किसी प्रकार का तनाव न लेने के लिए कहा। घर का सारा काम सास कर रही थी। मेरी तबीयत थोड़ी-थोड़ी ठीक होने लगी। रोक्सी मेरी खातिर ऑफिस से जल्दी आ जाता था। घंटों बैठकर मुझे समझाता, 'कुछ दिनों की ही बात है, थोड़े दिनों में तुम नाटक शुरू कर देना। मैं सब कुछ संभाल लूँगा। सास मुझसे बात नहीं करती, ये मुझे बुरा तो लगता लेकिन फिर मैंने भी परवाह करनी छोड़ दी।

मैंने अपने आपको संभालना सीखा, दुनिया से लड़ना सीखा। मुझ में थोड़ी-थोड़ी हिम्मत आने लगी। मेरी तबीयत ठीक होने पर भी मैं सुबह देर से जगती। जान-बूझकर घर का काम नहीं करती ताकी सास पर ही सब जिम्मेदारी रहे। ये सब करना मुझे अच्छा तो नहीं लगता था लेकिन ऐसा करना मैंने जरूरी समझा। क्यों मैं उन लोगों की परवाह करूँ जिन्होंने मेरी कोई परवाह नहीं की? सही मायनों में मैं अपने आप में श्यामली को देखने लगी। अत्याचार, अत्याचार ही होता है चाहे वो पुलीस करे या घर के सदस्य। छः महीनों तक ये सब चलता रहा। मैंने पाँच महीनों तक नाटक नहीं किया। बूधन थियेटर से दूर रही। पर इन पाँच महिनों में मैंने दुनिया, समाज, घर, रिश्तेदारों और मुश्किलों से लड़ना सीखा। मैं ध्यान नहीं देती कि सास मुझसे कुछ कहे या पूछे। कुछ समय बाद वो भी कलकत्ता चली गयी। वापस आने पर उनकी तबीयत खराब हो गयी, उन्हें डायबिटीस हो गयी। आधे अंग में

लकवा मार गया । उसे अस्पताल में दाखिल किया । एक पल के लिए मैंने सोचा कि मैं भी अस्पताल न जाऊँ, उनकी परवाह न करूँ । पर बुरे के सामने बुरा बनो तो बुराई और बढ़ती है । रोक्सी का ख्याल करते मैं अस्पताल गयी। मैंने सास की हर तरह से सेवा की । सब कुछ भुलाकर हर तरह से उसका ख्याल रखा । शायद मेरी अच्छाई की वजह से एहसास हुआ कि उसने जो किया वो गलत था । वो ये कह तो नहीं पायी पर मैं समझ गयी । मैंने हमेशा अपनी सास को अपनी माँ का दर्जा दिया । उसे कभी सास नहीं माना । लेकिन फिर भी मैं थोड़ी-थोड़ी उससे बेरूखी रखने लगी । सास को ये बरताव ठीक नहीं लगा । वो भी इसी तरह रहने लगी। उसकी तबियत ठीक होने लगी । कुछ समय बाद मुझे 'आनंदी' स्वैछिक संस्था में नौकरी मिली । मुझे एक डॉक्युमेन्टरी फिल्म का हिन्दी में अनुवाद करना था । चार हजार रुपए तन्ख़ाह थी। सोच रही थी करूँ या नहीं । लेकिन फिर खुद सास ने ही कहा की मैं ये नौकरी स्वीकार लूँ। इसलिए मैंने ये काम हाथ में लिया। रोक्सी की भी तरक्की होने लगी । उसे 'डी.एन.ए.' अंग्रेजी समाचार पत्र में नौकरी मिली। यही तो उसका सपना रहा था । पर फिर एक नई मुसीबत आ पड़ी। हम छारानगर छोड़कर नए घर में रहने गए तो कुछ दो महीने बाद आस-पास के लोगों को पता चला कि हम छारा हैं । पड़ौसियों ने कहा, 'तुम छारा हो इसलिए इस सोसायटी में नहीं रह सकते । छारा चोर होते हैं, चोरी करते हैं'। हम सबको बहोत आघात लगा । बहोत गुस्सा आया । हमने उनका सामना करते हुए कहा, 'हम छारा हैं तो क्या हुआ ? क्या हम इन्सान नहीं हैं ? क्या हमें सोसायटी में रहने का हक नहीं है'? उस वक्त रोक्सी 'डी.एन.ए.' में ही था। उसने सोचा कि ये बात पेपर में छाप दे। लेकिन जिस आदमी से मकान खरीदा था उसने ही हमें वहाँ रहने से मना किया था । वो हमारा बहोत करीबी दोस्त था । उसके मना करने पर हमने उसी वक्त फैसला लिया कि हम छारानगर लौट जायें। लेकिन फिर ख्याल आया कि अगर हम छारानगर वापस चले गये तो ये हमारी हार होगी । क्यों हम समाज के बीच नहीं रह सकते? हर जाति के बीच नहीं रह सकते? हमने तो कभी कोई जात-पात में भेद-भाव

नहीं रखा, तो लोगों को छारा जाति से क्यों तकलीफ है? छारा कोई खूनी तो नहीं हैं। हम चोर हैं पर हम अपना पेट चलाने के लिये ही चोरी करते हैं। ये भी बहोत हद तक कम हो चुका है । हम लोगों ने किसी और नए घर में जाने की सोची। एक नया घर खरीदा और वहाँ जाकर हमने खुद होकर लोगों को बताया कि हम छारा हैं और छारा जाति को जन्मजात चोर माना जाता है । लेकिन वहाँ के लोगों को कोई एतराज़ नहीं हुआ। बल्कि उन लोगों ने खुद कहा, 'छारा हो तो क्या हुआ, इन्सान ही तो हो, इन्सान को कहीं भी रहने का हक है'। हमें ये सुनकर बहोत अच्छा लगा ।

हम बहोत खुश ये कि नए घर में आने के बाद सब कुछ ठीक-ठाक चलने लगा । छारानगर की बहोत याद आती है लेकिन मैं छारानगर वापस जाना नहीं चाहती क्योंकि छारानगर से बाहर निकलकर मैंने बहोत कुछ सीखा है । वहाँ वही करना पड़ता है जो समाज के लोग कहें । अगर वहाँ सभी लोग हर त्यौहार मनाते हैं, तो हमें भी ये सारे त्यौहार मनाने पडते हैं। अगर शादी में दिखावे के लिए खर्चा करते हैं, तो हमें भी खर्चा करना होगा । लेकिन यहाँ ऐसा नहीं है। जो मन लगे वो कर सकते हैं, किसी को किसी की कोई खबर नहीं रहती। कौन क्या कर रहा है, कुछ पता नहीं रहता । छारानगर में ऐसा नहीं है। हर घर के बारे में सबको पता होता है । हर कोई हर किसी के बारे में जानता है, समझता है । और हर घर की कहानी भी एक जैसी ही होती है । माँ, बेटी, सास, बहू, सब एक जैसा है। इस सब में कोई बुराई नहीं है पर सही है या नहीं पता नहीं । छारानगर से बाहर निकलकर मैंने समाज और अपने परिवार से जो लड़ाई की, मुझे उस बात का कोई दु:ख नहीं है । शायद अब मैं श्यामली को सही मायनो में समझने लगी हूँ । अब मैं हर मुश्किल का सामना हँसते-हँसते करने लगी हूँ। मैंने अपने आपको बहोत मजबूत कर लिया है ।

किसी मीटिंग में देवी सर ने अम्मा की लिखी किताब का ज़िक्र किया था। आलोक ने वादा किया कि वो 'एन.एस.डी.' में पढ़ाई पूरी करके एक प्रोसीनीयम नाटक बनायेगा। सो उसने महाश्वेता देवीजी की एक कहानी पर नाटक बनाने का

निश्चय किया। उसने 'चोली के पीछे क्या है?' नाटक की तैयारी शुरू की और मुझे शामिल किया । पाँच महिनों के बाद मैंने बूधन थियेटर में फिर से काम करना शुरू किया । इस बार मेरी सास ने कुछ कहा तो नहीं, पर अगर वो कुछ कहती भी तो मैं उनका निर्णय नहीं मानती । मैंने विरोध करना भी सीख लिया था । प्रोसीनीयम नाटक था जो हम पहली बार कर रहे थे । थोड़ा मुश्किल लगा पर हमने यह नाटक तैयार किया। हमने पहले कभी प्रोपर्टी और संगीत के साथ नाटक नहीं किया था । ना ही स्टेज पर परफोर्म किया था । हमारे लिये तो नुक्कड़ नाटक ही नाटक था । प्रोसीनीयम नाटक करते समय हमें कई नयी बातें सीखने को मिलीं । उस के बाद आलोक ने जां जेनेट द्वारा लिखित नाटक 'ला बाल्कन' भी किया । उसकी स्क्रिप्ट दक्षिण ने लिखी और आलोक ने निर्देशन किया । नाटक का नाम रखा 'एक और बाल्कनी' । 'एक और बाल्कनी' और 'चोली के पीछे क्या है ?', ये दोनों नाटक में मेरी अलग ही भुमिका रही । ये पात्र निभाने में दिक्कत भी हुई और खुशी भी । नाटक के साथ-साथ मैंने टी.वी. में काम करना शुरू किया । नए-नए लोगों से मिलना, नई-नई बातें सीखना, ये मुझे अच्छा लगता है । घर में भी अब शान्ति बनी है । रोक्सी की तन्ख़ाह भी बढ़ रही है और मुझे भी बहोत काम मिलने लगा है। मैंने अपने बात करने का तरीका, अपना पहनावा, सभी कुछ बदल दिया है । बहोत अच्छा महसूस करती हूँ, आल्बम, टी.व्ही. सीरियल, नाटक, ये सब करते-करते मुझे एक फिल्म भी मिली। मैं फिल्मों में काम करना नहीं चाहती थी, लेकिन जब फिल्म का प्रस्ताव आया तो मना नहीं कर पायी। पता नहीं क्युं । फिल्म का अलग ही अनुभव रहा। थियेटर ने मेरी जिन्दगी बदल दी । आज तक जो भी मैंने जीवन में सीखा के नाटक के जरिए ही सीखा । पर फिल्म करने के बाद मुझ में और भी हौसला आ गया। मेरी पहचान बनने लगी, मेरा नाम होने लगा । हालांकि, नाम तो मेरा थियेटर की वजह से बना था । पर फिल्म करने से मुझे और भी मान्यता मिली। पहली फिल्म के बाद मुझे कई अन्य फिल्मों के प्रस्ताव आए। अब तक मैने तकरीबन बारह फिल्में और तीन सीरीयल में काम किया है और दो सीरीयल अभी बन रहे हैं ।

नाटक जैसे मेरे जीवन का एक अंग बन चुका है। मैंने अपने आपसे वादा किया है कि मैं 'बूधन थियेटर' कभी नहीं छोड़ूँगी। मुझे याद है, हमें हैदराबाद जाना था 'चोली के पीछे क्या है?' का शो करने। मम्मी ने फिर मुसीबत खड़ी की। वो मेरे हैदराबाद जाने से पहले आलोक से मिलने चली गयी जिससे मैं हैदराबाद न जा सकूँ। घर पर वो न हो तो मैं कहीं जा नहीं सकती। इस बात का मम्मी ने फायदा उठाया। मुझे लगा कि मेरे जाने से पहले मम्मी आ जायेगी पर वो नहीं आयी। इसलिए मैंने क्रान्ति को छारानगर अपनी मौसी सास के पास रखा और तरुण को अपने घर पर। मैं बच्चों को साथ नहीं ले जा सकती थी क्युंकि दोनों की परीक्षाएँ थीं। आलोक भी हैद्राबाद साथ चला था। ट्रेन में ही एक बार फिर आलोक ने मुझे समझाया की अब मुझे नाटक नहीं करना चाहिए। मैं इस बात से हैरान नहीं थी कि मुझे फिर नाटक छोड़ने पर मजबूर किया जा रहा था। मैं बहोत गुस्सा हुई। आलोक ने कहा, 'कुछ दिनों के लिये ही सही, पर मम्मी को मनाने के लिये तुम थोड़े दिनों तक नाटक में काम करना छोड़ दो'। मैंने सोचा कि शायद आलोक ठीक कह रहा है। घर लौटने पर जब रोक्सी को पता चला कि मैं नाटक वापस छोड़नेवाली हूँ तो वो बहोत गुस्सा हुआ। मैंने इससे पहले उसे इतना क्रोधित कभी नहीं देखा था। वो कहने लगा, 'तुम क्युं सब की बात सुनती हो?' मैंने बहोत सोचा और इस नतीजे पर पहोंची की रोक्सी जो कह रहा है, वही सही है। मैं क्युं सबकी बातें सुनूँ ? क्या किया है किसी ने मेरे लिये? मैंने सभी की हर तरह से मदद की। हर तकलीफ में घरवालों का साथ दिया। हर वो काम किया जो मैं कर सकती थी। किसी तकलीफ में कभी किसी का साथ नहीं छोड़ा। फिर भी मेरे साथ ही ऐसा सलूक क्युं किया जाता है? जब चाहा घरवालों ने कठपुतली की तरह मुझे नचाया। नचाने से याद आया कि जब घर के हालात ठीक नहीं थे तब सास मुझे शादी में ले जाती क्युंकि मैं नाच बहोत अच्छा कर लेती हूँ। मैं किसी शादी में जा कर बैठूँ तो मुझे नचाए बगैर कोई मानता नहीं है। नाचने पर मुझे बखशीश मिलती है। सिर्फ एक गाने पर नाचूँ तो भी पांच सौ से छः सौ रूपए तक बखशीश मिलती। ये पैसे घर में काम आते। इतना कुछ करने के बाद भी मेरी किसी ने

कोई परवाह नहीं की। लेकिन अब मैं इन बातों की आदी हो चुकी हूँ। अब मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता कि कौन मेरी परवाह करता है और कौन नहीं। अब मुझे अपने और रोक्सी के सपनों को पूरा करना है, अपनी मंजिल पानी है। मेरे कैरियर को लेकर रोक्सी बहोत चिंतित है। लेकिन मैं वो हर सपना पूरा करूंगी जो रोक्सी ने मेरे लिए देखा है, हर चुनौती से लड़ूँगी, हर मुसीबत का सामना करूँगी। आज मैं जो कुछ भी हूँ दक्षिण की प्रेरणा है, रोक्सी की मेहनत है। उसका साथ न होता तो शायद मैं घर की चार दीवारों में ही कैद रह जाती। मेरी सफलता का सारा श्रेय रोक्सी, दक्षिण, मेरी सास, और 'बूधन थियेटर' को जाता है। आप सोच रहे होंगे कि मैं मेरी सास को क्युं श्रेय दे रही हूँ? मैंने यहाँ अपने जीवन की कड़वी बातें ही लिखी हैं। मेरी सास बुरी नहीं है पर शायद समाज के दबाव से विवश होकर उसे मुझे नाटक करने से रोकना पडा होगा। बहोत सी स्थितीयों में उसने मेरा साथ भी दिया है। जब मैंने टीवी में प्रवेश किया तो शूटिंग के दौरान मेरे बच्चे और घर वही संभालती थी। कभी-कभी लोगों की बातों में आकर उसने मेरे साथ खराब बरताव भी किया। पर वैसे वो बहोत अच्छी है। हम दोनों में माँ-बेटी, सास-बहू और सहेली का रिश्ता है। मैं अपनी सास से बहोत प्यार करती हूँ। शायद अनजाने में ही सही, पर उसके आशीर्वाद से ही मेरी प्रगति हुई है। अब मैं लोगों की बातों पर नहीं, बल्कि अपने काम पर ध्यान देती हूँ। मुझे अपना कैरियर टी.वी. -मीडिया में नहीं, पर 'बूधन थियेटर' में बनाना है। टी.वी. मीडिया का काम मेरे लिए ज्यादा मायने नहीं रखता पर 'बूधन थियेटर' मेरे लिए बहोत कुछ है। अब मुझे लगता है कि मैं हर मंजिल को पार कर सकती हूँ। मेरा भी सपना है कि मैं मुंबई टी.वी. स्टार बनूँ, मुंबई जाकर स्टार टी.वी., जी टी.वी., सोनी टी.वी. सभी में काम करूँ। लेकिन ये मैं कर पाऊंगी या नहीं, पता नहीं। मैं सपने देखती हूँ, उन्हें पूरे करने की कोशिश भी करती हूँ, पर थोड़ा बहोत भगवान पर भी छोड़ देती हूँ। वैसे मैंने रोक्सी का एक सपना पूरा किया है। रोक्सी का सपना था कि मैं अपने बारे में एक डायरी लिखूँ जिसे भविष्य में लोग पढ़ें, लोगों को मेरी जिन्दगी के बारे में पता चले। मैं घर पर डायरी लिखती हूँ।

लेकिन इस पुस्तक में लिखने के बाद रोक्सी का सपना पूरा होता है। मेरे बारे में दुनिया को पता चलेगा। 'बूधन थियेटर' में दस साल पूरे करने पर मैंने सोचा है बूधन थियेटर में लड़कियों का होना जरूरी है। इसलिए मैंने एक नया ग्रूप बनाने की सोची। इसका नाम 'श्यामली विंग्स' रखा है। एक नाटक बनाने जा रही हूँ। इस नाटक की स्क्रिप्ट भी मैं ही लिख रही हूँ। मैं जब तक जीऊंगी तब तक 'बूधन थियेटर' में काम करूँगी और 'बूधन थियेटर' के हर नए नाटक को एक नयी श्यामली दूँगी, ये मेरा वचन है। मैंने अपने आप से बहोत से वादे किए थे पर निभा नहीं पाई। लेकिन ये वादा मैं जरूर निभाऊँगी। मैंने कभी सोचा नहीं था कि नाटक करने का शौक मेरा जुनून बन जाएगा। हाँ, नाटक मेरा जुनून है और इस जुनून को मैं कभी मिटने नहीं दूँगी।

शादी के बाद मुझे हर खुशी मिली, साथ में थोड़े बहोत उतार-चढ़ाव भी आए। मेरे ससुराल में मैंने हर सुख-दुःख का सामना किया। मैं ये समझती हूँ कि मुझसे ज्यादा खुश किस्मत और कोई नहीं है। पूरे भांतु समाज और छारानगर में मेरे जितनी खुशी किसी ने नहीं देखी होगी। सास-ससुर का माँ-बाप से ज्यादा प्यार, ननंद का बहन से ज्यादा प्यार और छोटे देवर का प्यार और इज्जत, इतना मान-सम्मान घर और समाज में किसी को नहीं मिला होगा। मेरा सबसे प्यारा दोस्त और मेरी जिन्दगी, रोक्सी हमेशा मेरे साथ है। इतनी खुशियाँ शायद ही किसी को मिली हो। मेरी शादीशुदा जिन्दगी और 'बूधन थियेटर' में मेरा काम, दोनों एक उतार-चढ़ाव के साथ चल रहे हैं। अगर मेरी शादी किसी दूसरे घर में हुई होती तो शायद आज मुझे कोई नहीं पहचानता। मैं भी वही कर रही होती जो आम तौर पर हर औरत करती है। घर-बच्चे, चूल्हा-चक्की, इसके अलावा मैं और कुछ नहीं कर पाती। अगर सबका इतना सहकार नहीं मिलता तो मेरी जिन्दगी बदलते मौसम की तरह ही चलती। जैसे सृष्टि में मौसम, धूप-छाँव, पानी है, ठीक उसी तरह मेरी जिन्दगी चल रही है। मेरी आगे की जिन्दगी कैसी होगी, ये मुझे पता नहीं है। हाँ, इतना जरूर कहूँगी कि जो भी मेरी आत्मकथा पढ़ रहा है उसे मैं हर मौसम में नाटक करते, सीखते, लिखते हुए बूधन थियेटर में नजर आऊँगी

और अपने बच्चों को भी यही प्रेरणा दूँगी। मेरे बच्चे बहोत समझदार हैं। क्रांति अभी आठ साल की है, कुछ समझ नहीं सकती लेकिन तरुण पंद्रह साल का हो गया है, उसे काफी कुछ समझ में आता है। मैं अपने बच्चों पर अपनी मर्जी नहीं थोपूंगी। वो अगर चाहें और उन्हें लगे कि उन्हें नाटक करना चाहिए तो वो करें। यही मेरी इच्छा है।

'त्रण वाना मुज ने मळया ह्यां मस्तक ने हा हवे काई नथी जोयतुं बहु दीधु मारा नाथ'।

v v v

छारा से छारा पत्रकार

रोक्सी गागडेकर

छारानगर । एक ऐसी जगह जहाँ किसी समय में कोई ऑटोरिक्शावाला भी आने से कतराता था। आप से कहता कि 'आप तो कोई अच्छे घर से लगते हो, आप क्यों छारानगर जैसी बदनाम बस्ती में जाना चाहते हो ?' वर्ष १९९८ में इस बदनाम बस्ती में एक छोटी सी नाटक बनी जिसने छारानगर के कुछ युवानों का जीवन हमेशा के लिए बदल दिया। मैं उन्हीं युवानो में से एक हूँ। 'बूधन' से 'बूधन थियेटर' के सफर में ये ग्रूप ने एक ऐसे मूवमेन्ट को जन्म दिया जिससे न सिर्फ छारा समाज की आवाज बल्की भारत के नौ करोड़ लोगों की आवाज को देश के हर हिस्से में लगातार पहोंचाया। 'बूधन थियेटर' ने न सिर्फ मेरी पर मेरे परिवार की जिंदगी बदल डाली। वैसे 'बूधन थियेटर' में मुझे कभी रुची न होती यदि मैंने अपने पिता, स्वर्गीय रसीक गागडेकर से समाज को बदलने की एवं सामाजिक मुद्दों पर विचार करने की शिक्षा न ली होती। बचपन में ही उन्होंने हमें शिक्षा का महत्त्व एवं सामाजिक बदलाव और बुराई के खिलाफ आवाज उठाने की प्रेरणा दी। स्कूल हो या कॉलेज, या फिर हॉस्टेल हो, जीवन के हर मोड़ पर उन्होंने मुझे मेरे छोटे भाई आलोक, बड़ी बहन, स्वर्गीय रचना और छोटी बहन शेफाली को बुराई, या यूँ कहिए कि गैरकानून प्रवृत्तियों से दूर रहने की सलाह दी। उनके उसी अरमान को पूरा करने के लिए 'बूधन थियेटर' मुझे हमेशा प्रेरित करता रहा है। छारानगर में किसी युवान को यदि गैरकानूनी तरीके से पैसे कमाने हो तो ये काफी आसान है। मेरे पिता पेशे से एडवकेट थे पर वकील होने से पहले, वो एक समाज सुधारक थे जिन्होंने न सिर्फ छारा समाज को एक जुट करने की नींव रखी पर छारा समाज में फैले सामाजिक दूषणों को दूर करने के अथाह प्रयत्न भी किए।

मुद्दा फिर पंचायत के पंचो द्वारा शोषण का हो, या फिर स्त्री शिक्षण की बात हो, उन्होंने हमेशा समाज के अधिकार के लिए आवाज उठाई और समाज को एक जुट होने की प्रेरणा दी। कई सालों तक वो अपनी कमाई से किताबें खरीदकर, उन्हें छारानगर के तमाम स्कूल जाते बच्चों को बिना मूल्य देते रहे। बस, उसी प्रेरणा की वजह से मैं छारा और उस जैसी अन्य घुमन्तु जनजातियों के बारे में सोचने लगा। फिर 'बूधन थियेटर' उसका एक जरीया बना। पापा ने हमेशा हमें अच्छा इन्सान बनाने की कोशिश की और हम उनके बताये रास्ते पर चलते गए।

समाज, सामाजिक समस्याएँ, छारानगर और छाराओं की मुख्यधारा में अस्वीकृति जैसी बातें मैं नौ साल का था तब ही से समझने लगा था। शाहीबाग के केन्टॉनमेन्ट में 'फिरदोस अमृत हायर सेकन्डरी स्कूल' में मैं चौथी कक्षा तक पढ़ा। उसके बाद पापा ने सोचा की मुझे छारानगर के सामाजिक वातावरण से दूर रखना चाहिए। इसलिए उन्होंने मुझे अहमदाबाद के थलतेज विस्तार की 'ईलाइट हॉस्टेल' में दाखिल करवाया। मैं इस होस्टेल में होम सिकनेस की वजह से ज्यादा दिनों तक नहीं रह सका और वापस छारानगर लौट आया। जो कि १९८९ में मुझे फिर से हॉस्टेल में दाखिल किया गया। तब मैं छठ्ठी कक्षा में था और हॉस्टेल में दो साल तक रहा। इस बार मुझे फीस न भरने की वजह से वापस घर आना पड़ा। इसके बाद मैं फिर से 'अमृत हायर सेकन्डरी स्कूल' में दाखिल हुआ। मेरे पिता ने हमेशा मुझे बाहरी समाज के संपर्क में रखने की कोशिश की। जो कि मुझे जामनगर कि सैनिक स्कूल में दाखिल करवाने के लिए उन्होनें मुझे हॉस्टेल लाईफ से वाकिफ करवाया था, पर मैं उस स्कूल की एन्ट्रेंस परीक्षा में पास नहीं हो पाया।

मेरा स्कूल का सफर १९९८ तक रहा और उसके बाद मैंने बी.बी.ए. की पढ़ाई की। स्कूल में मैंने कभी किसी नाटक या इतर प्रवृत्ति में भाग नहीं लिया। यूँ कहिए कि स्टेज फीयर इतना था कि अपनी लिखी कविता भी मैं स्टेज पर खड़े होकर नहीं पढ़ पाता था।

पापा ने हमेशा अपने साथिओं के साथ छारानगर की प्रतिभा को अन्य समाजों तक पहुँचाने की कोशिश की । इसके लिए उन्होंने अनेक प्लेटफोर्म एवं फोरम बनाए । जिसमें कोई भी शामिल हो सकता था । फिर चाहे लेखक हो, कवि हो, चित्रकार हो या फिर पुलिस ही क्यों न हो ? उन्होंने हमेशा छारा समाज का सकारात्मक पहलू ही लोगों को बताने की कोशिश की । वही जज्बा 'बूधन थियटर' में है।

अपने कॉलेज काल में पापा और उनके मित्रों ने मिलकर नया स्टडी ग्रूप या क्लब बनाया था। उन्होंने करीबन १९७५ में अपने घर पर एक लायब्रेरी शुरू की थी। उस समय बहोत से युवान उस लायब्रेरी का उपयोग करते थे। उसका नाम उन्होंने 'रिफोर्म क्लब' रखा था, जिसका हेतु था लोगों को बताना कि हम भी इन्सान हैं। बस उसी समय से मैं पब्लिक लाईफ की अपेक्षा करने लगा और सोचा कि मैं भी अपने मित्रों के साथ मिलकर एक नया रिफॉर्म क्लब बनाऊँगा।

पापा से यही सारी बातें सुनते-सुनते मैं बचपन से जवानी की तरफ आगे बढ़ता रहा । हर पल दिल में उनके जैसे क्रांतिकारी काम करने की इच्छा पालता रहा। छारा समाज से पंचो का दूषण हटाने के लिए उन्होंने काफी प्रयास किए । उन में से एक की बात करते हुए, एक बार पापा ने हमसे कहा कि १९८० के आसपास, जब वो अहमदाबाद की 'सेन्ट जेवियर्स कॉलेज' में पढ़ते थे, तब पंचो का दूषण दूर करने के लिए उन्होंने और उनके मित्रों ने मिलकर पूरी रात छारानगर में पोस्टर लगाये थे। ऐसा पहली बार हुआ था जब सामाजिक पंचायतों के शोषण के खिलाफ आवाज उठी थी। उसके बाद लोगों ने पंचो के खिलाफ आवाज उठाना शुरू किया और आज ये परिस्थिति है कि पंचायत का शोषण लगभग समाप्त हो चुका है । पर हाँ, सामाजिक पंचायतें अभी भी हैं। पापा के साहस की ऐसी कई कहानियाँ आज भी उनके मित्रों से सुनने को मिलती हैं।

छारा पंचायतों के शोषण पर उन्होंने नाटक बनवाए और परफॉर्म करवाए। ऐसा ही एक नाटक था, 'इसके जवाबदार हमी ही' । अर्थात्, छारा समाज

की परिस्थिति के जवाबदार हम लोग खुद हैं। छारा समाज के लोग एक दूसरे को पायमाल करने के लिए एक दूसरे पर गलत एफ.आई.आर. करवाते हैं और पंचायत इस बात का किस तरह से फायदा लेती है, इस नाटक में ये बताया गया था। ये नाटक छारानगर का पहला नाटक नहीं था, नाटक का आगमन तो छारानगर में उससे कहीं पहले हो चुका था जब १९७७ में प्रेम प्रकाशजी ने छारा युवानों को 'स्पार्ट्राकस' में गुलामों के किरदार में शामिल किया। मेरे पापा भी एक गुलाम का पात्र कर रहे थे। ये नाटक पहली बार छारानगर की सीमाओं से निकलकर अहमदाबाद शहर के 'विज्युअल आर्टस सेन्टर' में परफॉर्म हुआ।

ये सारी बातें मुझे हमेशा से प्रेरणा देती रहीं, समाज के बारे में सोचने के लिए, कुछ करने के लिए। मैंने और मेरे मित्र दक्षिण बजरंगे ने मिलकर पापा के 'रीफोर्म क्लब' तो फिर से शुरू नहीं किया । हम एक लायब्रेरी बनाने को सोच ही रहे थे कि उस वक्त महाश्वेता देवी एवं गणेश देवी का छारानगर में आगमन हुआ। जब उन्होंने हमसे कुछ माँगने को कहा तो हमने तुरंत एक लायब्रेरी की माँग रख दी और वो कबूल भी हुई । छारानगर लायब्रेरी का निर्माण १९९८ में हुआ जब पहली बार 'अंतराराष्ट्रीय डी.एन.टी. कन्वेन्शन' छारानगर में हुआ और 'बूधन' नाटक भी पहली बार परफॉर्म हुआ। उस दिन से आज तक ये नाटक देश के अलग-अलग कोनों में परफॉर्म हो रहा है।

मैंने बूधन के पहले परफॉर्मन्स में उस जेलर का किरदार किया था जिसने बूधन सबर को जान से मार डाला था और बाद में उसकी मौत को एक एक्सीडेन्टल डेथ का करार देने का प्रयास किया था। जो कि उस परफॉमेन्स की सारी तारिफें कल्पना-जो कि मेरी पत्नी है, उसे मिली थीं, क्युंकि अपने पति को पुलीस से छुड़वाने के लिए बिलखती, व्याकुल बूधन की पत्नी श्यामली के किरदार से उसने हॉल में हाजिर सभी लोगों की आँखों में आँसू ला दिए थे। बस, उसी वक्त से 'बूधन थियेटर' की पहली नींव रखी गई। पहली बार लोगों और मीडिया ने ये जानने की कोशिश की कि आखिर छारा समाज की समस्या क्या है ? वो क्युं क्राईम के साथ हैं ? क्या वे सुधरना नहीं

चाहते या उन्हें सुधरने का मौका नहीं मिला ? ऐसी कई चर्चाएँ बूधन के उस पहली परफॉर्मन्स के बाद हुईं ।

इस मुवमेन्ट को शुरूआती गति देने के लिए पापा ने काफी मदद की, पर जिस वक्त हम लोग ये परफॉर्मेन्स कर रहे थे उस वक्त पापा पोरबन्दर के सब-जेल में 'पासा' की सजा काट रहे थे। उनका गुनाह था, उनका एक पाक्षिक मैगेज़िन में पुलीस के खिलाफ इन्टरव्यु देना। उनका एक्टीविस्ट स्वभाव और पुलीस की साजिश की वजह से १९९८ में वो एक साल तक जेल में रहे थे।

तब मेरी शादी हो चुकी थी और मेरे लड़के तरुण का भी जन्म हो चुका था। उसी दौरान मेरी मम्मी, नीरुबेनका रोड एक्सीडेन्ट में पैर टूट गया । घर की हालत बहोत खराब थी। घर में पैसों की भारी तंगी पड़ने लगी। मैं और शेफाली कॉलेज में पढ़ते थे, जबकि आलोक बारहवीं कक्षा में था। मुझे जिंदगी में पहली बार ये एहसास हुआ की घर में सबसे बड़ा होने के नाते अब घर की सारी जवाबदारियाँ मुझ पर हैं।

उस वक्त तीन मुख्य जिम्मेवारी थी । पापा के लिए एक वकील का इन्तजाम करना, घर के खर्चों को पूरा करना एवं मम्मी के पैर का ऑपरेशन करवाना। वकील का तो पापा के एक बचपन के दोस्त ने बंदोबस्त कर दिया। ऑपरेशन, पापा के एक अन्य दोस्त की मदद से हो गया । पर घर का खर्च तो मुझे ही चलाना था। मेरे और कल्पना के सामने दो रास्ते थे, या तो छारा समाज के अन्य लोगों की तरह शॉर्ट कट यानी चोरी या शराब बेचकर पैसे कमायें या फिर महेनत मजदूरी करें । हमने दूसरा रास्ता चुना।

मैंने लोगों के घर-घर जाकर दूध बेचना शूरू किया और कल्पना ने सब्जी। हर रोज सुबह वो कुबेरनगर मार्केट से अपने सिर पर सब्जी रखकर घर आती और मम्मी के साथ मिलकर घर के बाहर ही सब्जी का ठेला लगाकर सब्जी बेचती। मैं सुबह पाँच बजे उठकर दूध खरीदता, उसे थैली में पैक करता और घर-घर जाकर होम डिलीवरी करता। दूध उसी थैली में बाँधता जिस में लोग शराब बाँधकर बेचते थे। मैं तब बी.ए. के द्वितिय वर्ष में अभ्यास कर रहा था, कॉलेज बिलकुल छुट गया था और किताबोंसे जैसे कोई नाता ही नहीं

रहा था। पर फिर भी जैसे-तैसे कर के मैंने कॉलेज का अभ्यास जारी रखा। मैं शाम को भी दूध लाकर लोगों को होम डिलीवरी करता था। लोग मुझ पर हँसते, मेरे पीछे मेरा मजाक भी उड़ाते थे। कहते कि पढ़ा-लिखा लड़का इस तरह की मजदूरी कर रहा है। पर मैंने किसी की बात पर ध्यान नहीं दिया, ध्यान दिया तो सिर्फ पापा की बात पर जिन्होंने कहा था कि कभी क्रिमीनल एक्टीवीटी में शामिल मत होना। उस वक्त अंग्रेजी शराब की एक बोतल बेचने से मुझे एक सौ रूपए की कमाई आसानी से हो सकती थी और ऐसी चार से पाँच बोतल शराब बेचना कोई मुशकिल काम नहीं था। वैसे, दूध और सब्जी बेचकर मैं और कल्पना करीब सौ रूपए कमा लेते थे । घर चलाने के लिए, मम्मी की दवाईयाँ और हम सबकी पढ़ाई के खर्चों के लिए और पैसों की जरूरत थी।

दूध बेचते वक्त के दो किस्से मुझे बहोत अच्छी तरह याद हैं। दूध खरीदने के लिए जिस किसी भी व्यापारी के पास जाओ, पहले तो वो विश्वास नहीं करता कि कोई छारा दूध बेचना चाहता है और अगर विश्वास कर भी ले तो वो कभी किसी छारे के साथ धंधा नहीं करना चाहता। उस वक्त मुझे पैसे देकर भी दूध खरीदने में काफी तकलीफें उठानी पड़ी। कई महिनों तक पहले पैसे देकर, फिर बाद में डिलीवरी देने का व्यवहार रखकर आसपास के लोगों को विश्वास आया कि सही में कोई छारा दूध का धंधा करना चाहता है।

१९९८ के अंत में गुजरात सरकार के होम मिनिस्टर, हरेन पंड्या और सामाजिक न्याय मंत्री, फकीरभाई वाघेला ने छारानगर से शराब के धंधे को बंद करने के लिए 'ऑपरेशन फीफ्टी-फीफ्टी' शुरू किया। इस ऑपरेशन के तहत पुलीस छारानगर के शतप्रतिशत घरों में घुसकर जो हाथ में आता उसको ले जाती, घरों में तोड़-फोड़ करती एवं घर के सभी सदस्यों पर अवैध शराब निकालने और बेचने का केस दाखिल करती। जिन पॉलीथीन थैलीयों में शराब बिकती है, मैं उसी प्रकार की थैलीओं में दूध की पैकींग कर के बेचता था। जब मेरे घर में पुलीस आई तो मैं घर पर नहीं था । मम्मी अकेली घर में थी। कोई अवैध चीज हाथ में न आने के बावजूद पुलीस मम्मी को सिर्फ इसलिए

पकडकर ले गई क्युंकि मेरे घर में वैसी थैलीयाँ थीं जिन में शराब बिकती है। मम्मी ने पुलीसवालों को समझाना चाहा पर कोई कुछ भी सुनने को तैयार नहीं था। उस वक्त मम्मी ऑपरेशन के बाद ठीक हो रही थी । मेरी 'टाईटन' की घड़ी तक घर से पुलीस चोरी कर के ले गई। जब पुलीस मम्मी को गाड़ी में बिठा रही थी तब मैंने उन्हें देखा और उन्होंने भी मुझे देखा । पर पुलीस तक जाकर उन्हें छुडा लाने की मेरी हिम्मत नहीं हुई, क्युंकि पुलीस के हाथ में जो भी व्यक्ति आ रहा था वो केस करने के खातिर उसे पकड़ रहे थे। मैं डर गया था कि कहीं मुझे भी पुलीस स्टेशन ले जाकर पुलीस केस न कर दे।

दूध और सब्जी की कमाई घर चलाने के लिए काफी नहीं थी। आलोक अपने कॉलेज का प्रिय था क्योंकि उसने अपने कॉलेज को नाट्यस्पर्धा में अव्वल नंबर ला दिए थे । वही आलोक हमारे घर के पास एक सट्टे के स्टेन्ड पर लोगों को शराब पिलाने का काम करता था। जुआ खेलते खिलाड़ियों को जब शराब पीनी होती । आलोक उनको ग्लास में दारू भरकर देता। इस काम के उसे करीब सौ रूपए मिलते थे। इसी तरह शेफाली ने भी घर पर सिलाई काम शुरू किया और अपना खर्च निकालने लगी।

इन सभी समस्याओं के बीच 'बूधन थियेटर' नामक मुवमेन्ट हम सब में कहीं न कहीं धीरे-धीरे जन्म ले रहा था । ये नाटक इन्टरनेशनल डी.एन.टी. कन्वेन्शन में पेश किया गया था । इस नाटक ने हम सभी पर ऐसी असर की थी कि घर की समस्याओं से झूझते वक्त भी हम समाज के बारे में ही सोचते। ये सोच 'बूधन थियेटर' से मिलती गयी और हम एक के बाद एक, नाटक बनाते गये। 'बूधन' के बाद 'दीपक पवार', 'पीन्या हरि काले की मौत' और गुजरात के दंगो पर नाटक बनाए और उन्हें देश भर में परफॉर्म करते गए ।

समय बीतता गया । हमें संघर्ष करने की आदत सी पड़ने लगी और ये लडाई हमारा रोजिंदा जीवन बन गयी । उसी समय मल्लीका साराभाई, जो समाज सेवीका एवं नृत्यांगना हैं, उन्होंने 'तारा गुजराती' चेनल लॉन्च करने की घोषणा की। 'बूधन थियेटर' की वजह से वो मुझे और दक्षिण को अच्छी तरह से जानती थीं । उन्होंने हमें काम देने के लिए बुलाया। हम दोनों को

डायरेक्टरोरल असीसटेन्ट की जवाबदारी निभाने को कहा। तब मैं बी.बी.ए.के तीसरे वर्ष में पढ़ रहा था। सोचा कि क्या करूँ ? नौकरी करूँ या पढ़ाई ? घर की जरूरत नौकरी थी और पापा का अरमान पढ़ाई था। कॉलेज की एक प्रोफेसर, नेहा शाह को जब मैंने ये दुविधा बतायी तो उन्होंने कहा, 'किसी को मत छोड़ और दोनों जगह थोड़ा-थोड़ा ध्यान दे'। कॉलेज की एक दूसरी प्रोफेसर, अनघा दिक्षित ने उनका साथ दिया और कॉलेज में नियमित हाजरी न होने पर भी उन्होंने मुझे परीक्षा के समय एक्स्ट्रा क्लासीस के द्वारा काफी मदद की।

मुझे तारा चैनल में नौकरी मिल गई । यहाँ पापा भी जेल से रिहा हो गये। सोचा कि अब सब कुछ ठीक हो जाएगा पर किस्मत में कुछ और ही लिखा था। एक रात अचानक पापा की तबियत खराब हो गई, उन्हें पेट में दर्द होने लगा और पेट फूल गया। किसी निजी डॉक्टर के पास ले जाने जितने पैसे तो थे नहीं, तो सोचा उन्हें कुबेरनगर विस्तार की 'शांतिप्रकाश अस्पताल' में ले जाया जाय। डॉक्टरों ने जांच की और कहा कि शायद इनकी किडूनी खराब हो चुकी है और उन्हें किसी बड़े अस्पताल में ले जाना पड़ेगा।

हम उन्हें तुरंत सैजपुर विस्तार की 'संजीवनी हॉस्पिटल' में ले गए। वहाँ के डॉक्टर से पापा की पहले से ही ट्रीटमेन्ट चल रही थी, उन्होंने कहा कि पापा की किडनी खराब हो चुकी है और आनेवाले दो-तीन महिने बाद उन्हें डायालीसीस पर रखना पड़ेगा। मैं कुछ समझ नहीं पाया । डायालीसीस यानी की जिन्दा मौत, जिससे आदमी हर रोज अपनी मौत की तरफ धीरे-धीरे नजदीक जाता रहता है। पैसों की कमी से जेल में ठीक से दवाइयाँ न लेने के कारण उनकी दोनों किडनियाँ खराब हो चुकी थीं। पूरे परिवार के पैरों के नीचे से जमीन सरक गई। डॉक्टरों ने कहा कि अगर उनकी किडनी ट्रान्सप्लान्ट करवाते हैं तो काफी खर्चा आएगा।

अभी तो अच्छे जीवन का सपना देखा ही था कि वो टूट गया। मैं, मम्मी और आलोक तीनों उन्हें अलग-अलग अस्पतालों में ले गए पर कोई फायदा नहीं हुआ । डॉक्टरों ने कहा कि जिंदा रखना हो तो डायालीसीस

जरूरी है । शेफाली की शादी की उम्र थी । परिवारवालों ने कहा, 'मरने से पहले कन्यादान तो कर दो '। मेरी भुवाजी का लड़का उमेश जो कि वकील है, उससे शेफाली की शादी तय हुई ।

पर एक तरह से कहा जाए तो भगवान ने पापा की ओर से हमें कुछ महिनों का समय दे दिया था । शेफाली की शादी करवाने के लिए। वो आगे पढ़ना चाहती थी पर संजोगों के वश में आकर उसने घरवालों की हर बात में हाँ कर दी और उमेश के साथ उसकी शादी की तैयारियाँ शुरू हुईं । शादी की तैयारी के वक्त घर में दाल-रोटी बनाने जितने भी पैसे नहीं थे। सारे रिश्तेदारों को बुलाकर पापा ने कहा, 'मेरी बेटी की शादी है, मैंने आज तक आप लोगों की बहोत बार मदद की है, आज इस बार मेरी मदद कीजिए और मेरी बेटी की शादी के लिए कुछ करीयावर (दहेज) इकठ्ठा करने में मेरी मदद कीजिए।'

वैसे तो छारानगर की समाज रचना के मुताबिक दहेज प्रथा नहीं है पर फिर भी बेटी को बिदा करते वक्त माता-पिता से जो बन पड़े वो देने की प्रथा रही है। इसी प्रथा से विवश, पापा ने भी लोगों से मदद माँगी । रिश्तेदारों से जो बन पड़ा वो मदद की। कुछ लोगों ने महिने के पाँच टका व्याज से पैसे दिए। कुछ दो लाख का हमने व्याज लिया । सोचा कि ये पैसा हमें पापा की मौत के बाद उनके बीमे से मिली राशी से चुका देंगे । पर वो पैसा हमें ही चुकाना पडा क्युंकि उनकी मौत के बाद वो बीमा 'नो क्लेम' हुआ। खैर, शेफाली की शादी हुई और उमेश की मदद से उसने शादी के बाद भी अपनी पढ़ाई जारी रखी और अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. किया।

शेफाली की शादी की बात है, जब माईक पर दहेज में दी गई रकम बोली जा रही थी तब पापा ने कहा, 'मैं अपनी बेटी को दहेज में ज्यादा पैसा या चीज़े नहीं दे पाया पर मैं मानता हूँ कि मैंने मेरी बेटी को जो शिक्षा दी है, वो शिक्षण एवं उसकी पढ़ाई ही मेरी तरफ से उसके पति के लिए सबसे बड़ा दहेज है।' ये सुनकर हम सभी की आँखों में आँसू आ गए। तब मुझे एहसास हुआ कि पापा की सबसे बड़ी दौलत हम भाई-बहन और हमारा शिक्षण है।

जब मैं तारा चैनल में नौकरी करता था तब मैंने मल्लिका दीदी और मेरे

बॉस से ये बात छुपाई कि मेरी पढ़ाई चल रही है। मार्च २००० में मुझे नौकरी लगी और अप्रैल के महिने में मेरी बी.बी.ए. के दूसरे वर्ष के फाईनल इम्तिहान थे। मुझे डर था कि यदि मैंने मल्लिका दीदी से परीक्षा के हेतू छुट्टी माँगी तो वो मुझे नौकरी से निकाल देंगी । मेरे लिए नौकरी पढ़ाई से कहीं ज्यादा जरूरी थी।

'तारा चैनल' लॉन्च होने को था । जो भी लोग उससे जुड़े थे वो सब दिन-रात एक कर, 'प्रोग्राम बैन्क' बनाने में लगे थे, और ऐसे में मैं छुट्टी माँगने लिए जा रहा था। मैंने एक मौका लेना चाहा और मल्लिका दीदी को सारी बात बताई । उन्होंने एक सेकन्ड भी नहीं लिया निर्णय करने को। कहा, 'वापस कब आओगे ?' मैंने कहा, 'दीदी बीस दिनों के बाद ।' उन्होंने कहा 'ठीक है।' मुझे लगा जैसे मेरे पापा ने मेरी पढ़ाई के लिए जो सपने देखे है वो अब पूरे हो पाएँगें ।

दिन-रात एक कर के मैंने पढ़ाई शुरू की और सारा ध्यान पढ़ाई पर केंद्रित किया। बी.बी.ए. के पहले वर्ष तक मुझे कॉलेज में कोई नहीं जानता था पर दूसरे वर्ष में मैंने 'बूधन नाटक' का गुजराती में गुजरात समाचार आई.एन.टी. स्पर्धा में परफॉर्मन्स किया। दक्षिण और कबीर ठाकोर नामक नाट्यकार की मदद से बूधन का गुजराती में चयन हुआ। कबीर ने बूधन का गुजराती में अनुवाद किया ।

किसी भी बी.बी.ए. कॉलेज के लिए नाटक स्पर्धा में भाग लेने का ये पहला अवसर था । लोगों को लगा कि मैनेजमेन्ट के विद्यार्थी क्या एक्टिंग करेंगे। नाटक एवं एक्टिंग सिखाने की दक्षिण की निपुणता की वजह से मेरे अलावा सभी फर्स्ट टाइमर्स को लेकर बना गुजराती 'बूधन' नाटक आई.एन.टी. के फाईनल तक पहुँचा और उसे 'बेस्ट एक्ट्रेस' का एवार्ड भी मिला। इसकी वजह से एन.आर. बी.बी.ए. कॉलेज की शहर में चर्चा होने लगी और मैं कॉलेज में पॉप्युलर हो गया इसका फायदा मुझे ये मिला की कॉलेज के सारे प्रोफेसर्स ने अपना समय मुझे दिया और मैं परीक्षा की तैयारी अच्छी तरह से कर सका। मेरी कॉलेज में नेहा शाह नामक प्रोफेसर को मैंने

घर की सारी तकलिफें पहले से ही बताई थीं, उन्होंने दूसरे प्रौफेसर्स की मदद से मेरे लिए एक्स्ट्रा क्लासीस का बंदोबस्त करवाया ।

नाटक के फाईनल स्पर्धा में मैं सर्वश्रेष्ठ एक्टर का नॉमीनी था । पर वो एवॉर्ड मुझे नहीं मिलने के बावजूद मैं बहोत खुश था क्युंकि वो एवॉर्ड आलोक को उसकी नाटक, 'तु तु तु तु तु तारा' के लिए मिला था। उस वक्त आलोक एच.के. कॉलेज के प्रथम वर्ष में था । उस नाटक के बाद आलोक का नाम शहर के हर नाटक प्रेमी की जबान पर था। इस स्पर्धा में आलोक ने लगातार तीन साल बेस्ट एक्टर का एवोर्ड जीतकर एक नया रेकर्ड बनाया था।

इन सारी प्रवृत्तियों के साथ उस वक्त 'बूधन थियेटर' की नाटक 'एन्काउन्टर' चल रही थी। मैं उस में दीपक का किरदार अदा कर रहा था और कल्पना उस में पवार की पत्नी, तनुजा का किरदार निभा रही थी। नाटक की रिहर्सल ज्यादातर रात को होती थी । इसलिए नौकरी करते-करते नाटक करना आसान हो गया था, बस शो के दिन एक छुट्टी लेनी पड़ती थी। बहोत से लोग ये सलाह देते कि मुझे और कल्पना को अब नाटक वगैरे छोड़ देनी चाहिए। घर के हालात इतन खराब होने के बावजूद पता नहीं क्युं मुझे कभी गलती से भी ये खयाल नहीं आया कि ये 'बूधन थियेटर' मुझे क्या दे रहा है, मैं क्युं इसमें अपना समय बिगाड़ रहा हूँ।

जिन्दगी तीन रास्तों पर चलने लगी, 'तारा चैनल' की नौकरी, कॉलेज की पढ़ाई और घर के हालातों से लडाई। अब तक घर के सभी सभ्यों को दुःख और व्याजवालों की व्याज की रकम समय पर नहीं पहोंचाने की वजह से उनकी गालियाँ तक सुनने की आदत पड़ गई थी। शेफाली की शादी और पापा के इलाज के लिए उधार लिए पैसों का व्याज चुकाने में ही मेरा, कल्पना, आलोक और मम्मी का पूरा समय बीत जाता था। हम लोग ऐसे समय की राह देख रहे थे जब इन सारी तकलीफो से छुटकारा मिले । जानेवाले हर दिन के साथ पापा की सेहत खराब हो रही थी और मौत उनको हर रोज थोड़ा-थोड़ा निगल रही थी। पर बचपन से फाईटर रहनेवाले पापा आखरी समय तक मौत से लड़ते रहे। वो हमेशा कहते, यदि मरने तक नहीं तो मरने के बाद

तो मैं उधार लिए सारे पैसे चुका दूँगा, और हम सब लोगों को गैरकानूनी प्रवृत्तियों से दूर रहने का पाठ पढ़ाते रहते।

कभी-कभी तो लगता कि उनकी बातें बेकार हैं, क्युंकि जो लोग क्रीमीनल एक्टीवीटी में थे वो सारे लोग हमसे कहीं ज्यादा सुखी लगते थे। घर के हालात देखकर आलोक कभी-कभी बहोत ज्यादा विचलीत हो जाता और शॉर्टकट से पैसे बनाने के लिए प्रेरित होता। पर उसके कॉलेज का ग्रूप और प्रौफेसर सौम्य जोशी ने उसे हर कठिन मोड़ पर न सिर्फ सँभाला पर एक छोटे भाई की तरह हमेशा उसे क्रीमीनल एक्टीवीटी से दूर रखा । सौम्य और आलोक के गुरु-शिष्य के संबंधो को लेकर तो अखबार न्युज़ स्टोरीज़ लिखने लगे थे। आज तक आलोक के हर कठीन मोड़ पर सौम्य उसे साथ मिलते हैं।

मेरी तनख्वाह उस वक्त छ हजार रुपये थी । महिने की सात तारीख को तनख्वाह आती थी और नौ तारीख को व्याज के सात हजार रुपये चुकाने होते थे। जब तक 'तारा गुजराती चैनल' में नौकरी रही यही सिलसिला चला। सारी कमाई सिर्फ ब्याज में गई और सूत तो अंत तक खड़ा ही था। मेरी और कल्पना की कमाई से ब्याज चुकाते, आलोक सट्टे के स्टेन्ड पर नौकरी करता, मम्मी और कल्पना शाम को पकौडे और ब्रेड बेचते । मम्मी साथ में देशी शराब भी निकालती थी जो उसके मामाजी, अजीतभाई खरीद लेते थे। उनकी मदद की वजह से काफी महिनों तक हमें खाना मिलता रहा ।

कल्पना मम्मी को भट्ठी से शराब निकालने, पकौडे बनाने एवं शराब और सब्जी भी बेचनेमें उनकी मदद करती । हमारी शादी को चार साल हुए थे और छारा समाज की परिभाषा के अनुसार कल्पना एक पैसेदार परिवार की थी। यदि वो चाहती तो दुःखों से भागकर अपने माता-पिता के पास वापस जाकर सुखी जीवन व्यतीत कर सकती थी । पर मुझे आज तक ऐसा कोई दिन याद नहीं जब उसने गलती से भी कहा हो कि वो इन दुःखों का सामना नहीं कर सकती और अपने माता-पिता के घर जाना चाहती है। मेरी सासुमाँ, चन्द्राबहन तमायची, जिन्होंने इस बुरे समय में मुझे बहोत सँभाला । उन्हें पहले तो हमारे घर और कल्पना की हालत देखकर दुःख हुआ । सोचा

होगा कि उन्होंने अपनी इकलौती बेटी को दुःखों के जंजाल में धकेल दिया है।

एक बार जब उन्होंने कल्पना से कहा, अगर तू घर चलना चाहती है तो मेरे यहाँ चल, वहाँ तुझे ये सारे काम नहीं करने पड़ेंगे। तब कल्पना ने उनसे कहा, 'मुझे यहाँ पर कोई दुःख नहीं है, मैं बहोत खुश हूँ, मेरे पास प्यार करनेवाली सास है, ससुर है और सारा परिवार है।' कल्पना ने उनसे कहा कि इसके बाद ऐसी वो कभी बात सोचे भी नहीं, वरना वो उनसे अपना रिश्ता तोड़ देगी। उस दिन से मेरी सासु ने हर पल, हर मोड़ पर हमारी मदद की।

पापा की मौत हुई उससे पहले उन्हें पुलीस पकड़कर ले गई थी और सिर्फ उन्हें न मारने और लूट का फर्जी केस न लागू करने के लिए एक लाख रूपए माँगे। कल्पना, जो कि चालीस तोला सोना अपने दहेज में लेकर आई थी, उस में से हम ने कुछ सोना गिरवी रखकर पुलीस के चंगुल से पापा को बचाने की व्यर्थ कोशिश की। इसके पहले कुछ सोना पापा ने पहले से ही घर की समस्याओं का निराकरण लाने के लिए बेच दिया था।

एक बार मेरी सासु ने कल्पना से उसके गहने के बारे में पूछा तो उसने कहा, 'ये गहने अब मेरी संपत्ति हैं, मैं उन्हें पहनू की मेरे ससुर का दुःख दूर करने के लिए उन्हें सौंप दूँ, आप इस मामले में न बोलें।' बहोत बार सोचता हूँ कि क्या एसे हालातों से किसी लड़के को कल्पना से ज्यादा अच्छी लड़की मिल सकती थी ? जब गहराई से सोचता हूँ तो मुझे कल्पना जैसी कोई अन्य लडकी नजर नहीं आती। मैं अक्सर सोचता हूँ कि मैंने या मेरे परिवार ने कुछ अच्छे कर्म किए होंगे जिससे हमें कल्पना मिली।

पहली बार जब १९९८ में हम डी.एन.टी कन्वेन्शन में नाटक बनाने का सोच रहे थे तब श्यामली के पात्र के लिए किसी लड़की की शोध में थे। कल्पना ने कहा कि उसने कथक नृत्य की अधूरी शिक्षा ली है । क्युंकि तब दक्षिण को महसूस हुआ कि कल्पना श्यामली का पात्र बखूबी निभा पाएगी क्योंकि श्यामली के पात्र में भावाभिव्यक्ति अत्यंत जरूरी है। कल्पना ने जब-जब श्यामली का पात्र किया तब-तब उसने 'बूधन थियेटर' के लिए एक नया

मुकाम बनाया और लोगों को बूधन के बारे में सोचने एवं कुछ करने के लिए मजबूर कर दिया। 'बूधन थियेटर' के परफॉर्मन्स कल्पना के बगैर होने लगभग असंभव लगने लगे। वो घर की बहू, बेटी, पत्नी या 'बूधन थियेटर' की एक्ट्रेस हो, हर जगह कल्पना का कमीटमेन्ट शतप्रतिशत रहा है। छारानगर के सामाजिक परिवेश में वैसे तो महिलाओं पर कोई खास पाबन्दी नहीं है, पर 'बूधन थियेटर' समाज में प्रचलित होने के पहले नाटक या नृत्य जैसी कलाओं को समाज स्वीकारना ही नहीं चाहता था, जिसकी वजह से कल्पना कइ बार डिप्रेस हो जाती थी । पर पति से ज्यादा दोस्त की तरह बर्ताव कर मैंने उसे हर ऐसे पल से बाहर निकालने की कोशिश की है । मैंने हमेशा उसे अपने निर्णय खुद लेने के लिए प्रेरणा दी और कहा है कि उसे जो अच्छा लगे वही वो करे, न की वो जो समाज को या फिर मुझे अच्छा लगता हो।

कभी-कभी मैं सोचता कि क्युं न ही सिर्फ छारा समाज, बल्कि हर समाज महिलाओं के प्रति डबल स्टान्डर्ड रखता है । एक तरफ तो वो महिलाओं को पुरुष के बराबर होने की बात करता है और दूसरी तरफ जब महिला घर से बाहर निकलती है तो उसके पैरों में चरित्र के नाम की बेड़ियाँ पहनाने को आतुर रहता है। समाज को अपनी हर दर्जे की महिलाओं को क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए, इसके बारे में सोचना बंद करना चाहिए और महिलाओं को अपने निर्णय खुद लेने की स्वतंत्रता देनी चाहिए।

मैंने और पापा ने चाहा था कि कल्पना आगे पढ़े । मैंने तो उसके लिए एन.एस.डी. का सपना देखा था लेकिन वो दसवीं कक्षा की परीक्षा पास नहीं कर पाई। पर उसने 'बूधन थियेटर' के लिए बहोत कुछ किया, जो शायद कोई एनएसडीयन भी नहीं कर पाता। सिर्फ दसवीं कक्षा तक पढ़ी हुई कल्पना 'बूधन थियेटर' की मदद से आज टी.वी. सीरीयल एवं गुजराती फिल्मों में एक्टींग कर रही है। पर उसे तो थिएटर से ही प्यार है । जब कभी थिएटर और कमर्शीयल सीरीयल्स के बीच चुनने की जरूरत खडी होती तब उसने 'बूधन थियेटर' को ही चुना।

हमारी शादी को एक साल ही हुआ था कि हम 'बूधन नाटक' में एक्टिंग

करने लगे थे। इस नाटक की प्रोसेस और उसके परफॉमेन्स के द्वारा हमें एक दूसरे को समझने के लिए काफी समय मिला और हमारी आपसी समझ कुछ इस तरह परिपक्व हो गई कि शादी के तेरह साल तक कभी भी कल्पना को अपने माइके नहीं जाना पड़ा। हाँ, हमारे बीच छोटे-मोटे झगड़े, नोंक-झोंक होती पर जिसे पति-पत्नी के बीच लड़ाई कहते हैं ऐसा कुछ भी हमारे वैवाहिक जीवन के दौरान नहीं हुआ। कल्पना ने मेरे घर के सभी सभ्यो को मेरे जितना ही प्रेम किया और कभी मुझे उनसे अलग होने की न तो सलाह दी, न ही कभी मेरे परिवार से अलग होकर हमारी अलग ग्रहस्थी बनाने की परवाह की। छारानगर में ये सामान्यतः देखा जाता है कि लड़कियाँ शादी कर के तेरा-मेरा करने लगती हैं, पर मेरे नसीब अच्छे हैं कि कल्पना ऐसी लड़कियों से अलग है ।

शुरूआत से ही हमने पैसों की काफी तंगी के बावजूद नाटक की चाह को अपने अंदर बनाए रखा। गुजरात के बाहर के शो के वक्त लगभग बगैर पैसों के भी हम नाटक करते । पता नहीं क्युं हम वो सारी तकलिफें भी सहन करते जो सामान्यतः हमारी तकलीफों में इज़ाफा ही करती थीं। 'बूधन थीयेटर' हमारे लिए दूसरा घर बन गया था, या यूँ समझिए कि घर के टेन्शन से दूर रहने के लिए मनोरंजन का साधन बन गया था। शायद इसलिए भी हम 'बूधन थियेटर' में सक्रीय होते गये।

जस्ट मैरीड कपल के वो सारे सुख हमने त्याग दिए थे जिनका हमारी उम्र के अन्य लोग लुत्फ लेते हैं । वो फिल्म देखना हो, घूमने जाना हो, अच्छे कपड़े खरीदना हो या फिर उत्साह से त्यौहार मनाना हो, हमने सब कुछ जाने-अनजाने त्याग दिया था और सारा ध्यान घर की समस्याओं को खत्म करने पर केंद्रित कर दिया था। शायद इसलिए हम एक दूसरे को अच्छी तरह से समझ पाए थे।

जब घर की हालत बहोत खराब थी, तो कई बार छोटी-छोटी बातों को लेकर हम सब के बीच मतभेद होते थे। जैसे मम्मी और कल्पना के बीच, मेरे और कल्पना के बीच, मेरे और पापा के बीच। पर गौर से देखने पर ये

एहसास हुआ कि इन सभी मतभेदों या लडाइयों की जड़ सबका पैसों की तंगी के कारण कुंठा थी। एक बार किसी चीज़ को लेकर हम सभी एक-दूसरे से इतने लड़े कि कल्पना ने मुझे अपने मायके जाने की धमकी दे डाली । तब पहली बार मुझे एहसास हुआ कि अगर कल्पना नहीं होगी तो मेरी जिंदगी में कुछ नहीं रहेगा और मैंने अपने बर्ताव के लिए सबसे माफी माँगी।

जो कि आलोक उन दिनों अपने कॉलेज की रीहर्सल और शो में इतना व्यस्त हो चुका था कि वो घर की छोटी-छोटी बातों में दखल नहीं देता था। 'तु तु तु तु तु तारा' के बाद आलोक को 'धारो के तमे मन्जी छो' और 'महात्मा बोम्ब जैसे' नाटको के लिए बेस्ट एक्टर का एवोर्ड मिला। इनके अलावा 'बूधन नाटक' में वो बूधन का किरदार करता, एन्काउन्टर में उसने 'इन्स्पेक्टर पांडे' का किरदार किया था। 'तु तु तु तु तु तारा' मुंबई में भी परफॉर्म हुआ।

हमें भी 'बूधन थियेटर' की वजह से देश के बहोत से भागों में प्रवास करने.का मौका मिला । हम बाहर के लोगों से मिले जिससे ये मालूम पड़ा कि बाहरी समाज के लोगों की जीवनशैली किस तरह की है और वो हमारे समाज को किस नज़रिये से देखते हैं। 'बूधन' की नाटकों के साथ मैं नौकरी भी करता रहा और तरह-तरह के लोगो को मिलता रहा, जीवन के अनेक पाठ सीखता रहा। नौकरी के दौरान मैं गुजराती लेखक, स्वर्गीय बकुल त्रिपाठी से मिला, उनके साथ मैं ने एक ट्रावेल शो डीरेक्ट किया था। उनसे मुझे मेरे अनुभवों को लेकर रोजींदी नोट्स लिखने की प्रेरणा मिली। उस डायरी की वजह से मैं जिंदगी के अभी तक के सबसे खराब समय को लिख पाया हूँ।

मैं जब नौकरी करता था तब पापा को डायालीसीस के लिए मम्मी ले जाती थी। मुझे कभी मौका मिलता तो मैं कोई बहाना बना देता। डायालीसीस के दौरान पापा को बहोत तकलीफ होती थी, बहोत दर्द होता था। उनकी आँखों में आँसू आ जाते थे, पर वो दर्द सहन करते थे। ये सब देखने की हिम्मत मेरे में नहीं बची थी। इसलिए ज्यादातर मम्मी ही सिवील अस्पताल में उन्हें डायालीसीस के लिए ले जाती थी, हर डायालीसीस के सात सौ रूपए

होते थे और ऐसी दो डायालीसीस हर हफ्ते करनी पड़ती थी, यानी चौदह सौ रूपए प्रति सप्ताह और छः हजार रूपए प्रति महीने का खर्च रहता था। हर डायालीसीस के बाद मम्मी किडनी हॉस्पीटल के रेसिडेन्ट डॉक्टर के केबिन में जाकर अपनी गरीबी की दुहाई देती जिसकी वजह से वो सात सौ रूपए की बजाय चार सौ या पांच सौ रुपये में डायालीसीस कर देते थे। इस सारी प्रोसेस में मम्मी को दो घंटे ज्यादा लगते थे। जब मम्मी को कोई काम रहता तो आलोक पापा को अस्पताल ले जाता था । वो भी ये सब देखकर दुःखी तो होता था पर शायद उसमें मुझसे ज्यादा हिम्मत थी पापा के दर्द को देखने की। डायालीसीस के दौरान कोई एक्स्ट्रा दवाइयाँ या फिर ग्लुकोज़ की बोतल भी चढ़ानी होती तो हमें टेन्शन होता क्युंकि एक्स्ट्रा पैसो का इंतजाम कैसे होता ?

'तारा चैनल' में नौकरी करते-करते एक साल बीत गया और मेरे कॉलेज का अंतिम साल खत्म होने को था। पर इससे पहले 'तारा चैनल' को कुछ खास आमदनी न होने की वजह से मल्लिका दीदी को उसे बंद करना पड़ा और हम सब नौकरी से वंचित हो गये। फाईनल इम्तिहान खत्म होने से पहले 'तारा चैनल' बन्द हो गया, मैं पूरी तरह से हताश हो गया था। पर इम्तिहान सर पर थे, इसलिए मैं हिम्मत करके अपने प्रौफेसर से मिला और उन्हें कहा कि मैं अंतिम साल की परीक्षा देना चाहता हूँ। इससे पहले मैं कॉलेज नहीं जाता था, पर मैंने पहली और दूसरी परीक्षा दी थी जिससे मुझे फाईनल इम्तिहान में बैठने की अनुमति मिली।

बी.बी.ए. के तीसरे वर्ष में फाईनान्स और मार्केटिंग जैसे विषय तो मेरे लिए बिलकुल नये थे, पर जैसे-तैसे करके मैंने परीक्षा दी और इक्यावन प्रतिशत से मैंने बी.बी.ए. उत्तीर्ण किया। मेरी पढ़ाई पूरी करने में मदद करने के लिए मैं मेरे कॉलेज के प्रोफेसर्स का जीवनभर आभारी रहूँगा। परिणाम आते ही सबसे पहले मैंने पापा को ये खबर दी । शायद मेरी ओर से ये पहली खुशी थी जो मैं पापा को दे रहा था। सबको यकीन था कि मैं पूरे साल एक दिन भी कॉलेज नहीं गया, कुछ विषय मेरे लिए बिलकुल नए थे, इस लिए मैं कम से कम इस

साल तो बी.बी.ए. पास नहीं कर पाऊँगा।

मुझे बी.बी.ए. के बाद एम.बी.ए. या आई.आई.एस. करना था । पर घर के हालातों को देखते हुए मैंने आगे पढ़ाई के बारे में सोचा भी नहीं । पर कुछ तो करना था, तो सोचा कि किसी कॉलेज से पार्ट-टाईम पत्रकारिता में एडमिशन ले लूँ जिससे आगे पढ़ाई का संतोष भी हो और कुछ काम भी किया जाए । कुछ भी सोचे समझे बिना मैंने 'भवन्स कॉलेज' में पार्ट-टाईम पत्रकारिता में एडमिशन लिया ।

नौकरी न होने की वजह से घर की हालत और खराब होती गई, पापा की तबीयत दिन-ब-दिन बिगडती गई, कमाई के साधन कम हो गए थे। 'तारा चैनल' की नौकरी की वजह से मैंने दूध का धंधा तो महिनों पहले बंद कर दिया था। कोई रास्ता नहीं दिखाई दिया तो मैंने मल्लिका दीदी को नौकरी के लिए गुजारिश की पर तब उनके पास भी मेरे लिए कोई काम नहीं था।

एक बार रात को पापा की तबियत बहोत खराब हो गई । घर में बिलकुल पैसे नहीं थे, दवाई के लिए लोगों से भीख भी माँगी पर पैसों का जुगाड़ नहीं हो पाया। पापा के कुछ दोस्तो के पास भी मैं मदद माँगने के लिए गया पर कोई मदद नहीं मिल पाई। मुझे सारे रास्ते बंद दिखे । मैं पूरी तरह से निराश हो चुका था। हारकर, थककर, मैंने सोचा कि छारानगर की एक चोरी की गेंग के साथ कुछ दिनों लग जाऊँ तो कुछ पैसे कमा लूँगा। पापा की शिक्षा, नीति, नियम, सच्चाई, मेहनत वगैरे सारे उसूल मुझे निरर्थक लगने लगे। मैंने सोचा कि अगर मैं गैरकानूनी काम से जुडूँगा और पापा को ये मालूम पड़ेगा तो वो शायद इस धक्के से मर जाएँगे । पर अगर दवाई के पैसे नहीं जुटा पाया तो पापा बच भी नहीं पाएँगे। हालातों के सामने घुटने टेककर मैंने ये फैसला किया । मेरा एक दोस्त जो कि ऐसे कामो में शामिल है, उससे मिलकर मैनें कहा कि मुझे वो अपने साथ चोरी करने के लिए ले जाए, ज्यादा नहीं तो सिर्फ एक बार । मेरे उस मित्र से जब मैंने रात के करीब बारह बजे कहा कि मैं उसके साथ चोरी करने जाना चाहता हूँ तो उसने नींद से जागते हुए कहा, 'रात के समय मजाक मत कर, मुझे नींद आ रही है। मुझे सोने दे।' उससे

बात करते-करते जब मेरी आवाज भर आई तब जाकर उसने मेरा यकीन माना। उसने मुझे हिम्मत दी और कहा कि चोरी करने के लिए जो चालाकी और तज़ चाहिए, मुझमें उसकी कमी है। उसने कहा कि 'चोरी करना पढ़ाई-लिखाई जितना आसान नहीं है, जिस में तुम फेल भी हो जाओ तो तुम्हें फिर से परीक्षा देने का मौका मिलेगा। यहाँ यदि तुम निष्फल हुए तो पुलीस की मार और लॉक-अप मिलेगी।' उसने मुझे इतना डराया कि मैं अपने फैसले पर फिर से सोचने के लिए विवश हो गया।

दरअसल मेरा मित्र मुझे बचपन से जानता था और वो नहीं चाहता था कि मैं किसी भी तरह के गैरकानूनी काम में शामिल होउँ। इसलिए उसने मुझे निरुत्साह करने के लिए ऐसी बातें की थी। दूसरे दिन उसने पापा के दवाई के लिए पैसे देकर मेरी मदद की पर मुझे अपने साथ ले जाने के लिए साफ ना कह दी। जब तक मैं जिन्दा हूँ तब तक मैं अपने उस मित्र के इस एहसान के तले दबा रहूँगा।

खैर, दवाई और डायालीसीस के बगैर पापा ज्यादा दिनों तक मौत से नहीं लड़ पाए। ६ अक्टूबर २००१ के रोज, जो शनिवार के दिन, पापा को लेकर मम्मी डायालीसीस के लिए सिवील हॉस्पिटल गई। तरुण उस वक्त चार साल का था, सुबह स्कूल जाने के लिए वो भी तैयार हुआ था। डायालीसीस के लिए जाने से पहले पापा ने तरुण को बहोत प्यार किया, मम्मी से कहा, 'आज उसे अस्पताल साथ ले लेते हैं, वो भी देखेगा दादा की डायालीसीस । पर मम्मी ने इन्कार कर दिया।

घर से निकलने के कुछ घंटो बाद फोन आया कि डायालीसीस के दौरान पापा की तबियत खराब हो गई है। मैं वहाँ पहोंचा तो जाना कि डायालीसीस की मशीन में खराबी होने के कारण ठीक समय से दिमाग तक खून नहीं पहोंचा और इसीलिए पापा कोमा में चले गए हैं। मम्मी एक डॉक्टर से दूसरे डॉक्टर के पास चक्कर लगा रही थी पर कोई फायदा नहीं हुआ। जब तक कोई डॉक्टर उन्हें देखने आता । पापा की हालत और खराब होती गई। डॉक्टर ने उन्हे आई.सी.यु. में खिसकाने को कहा और बताया कि तुरंत करीबन दो से तीन

हजार रुपए की दवाइयाँ लानी पड़ेंगी।

मेरे हाथ-पैर ठंडे पड़ गए। आलोक अपनी रीहर्सल छोड़कर अस्पताल आ चुका था। हम दोनों दवाई लेने सिवील हॉस्पिटल के मेडिकल स्टोर गये। पैसे तो हमारे पास थे नहीं इसलिए पहले तो हम ने केमिस्ट से विनती की कि हम थोड़ी देर में पैसों का बन्दोबस्त कर के पैसे दे जाएँगे । पर दुकानदार तो धंधा करने बैठा था, वो हमारा विश्वास क्युं करेगा ? उसने कहा, 'आपका पेशन्ट यदि सिरीयस है तो ये दवाइयाँ ले जाओ पर कोई चीज गिरवी रखनी पड़ेगी।' उस ईमरजेन्सी के समय कुछ समझ नहीं आया कि क्या करें। दूसरे कोई परिवारवाले भी साथ नहीं आए हुए थे जिनके सामने हाथ फैलाते। हम लोगों के पास तो चाय पीने तक के पैसे नहीं थे। पापा की हालत इतनी नाजुक थी कि किसी भी हालत में आई.सी.यु. तक दवाईयाँ पहोंचानी थीं। मम्मी के पास डायालीसीस के लिए लाये हुए तीन सो रुपऐ ही थे, दवाइयों का बिल करीब सत्ताइस सौ रुपऐ का हो रहा था।

हम दोनो भाई भगवान को कोसने लगे और हमारी विवशता पर रोने लगे। उस वक्त आलोक ने कहा, 'भाई, तू यहाँ गिरवी रह जा, तब तक मैं दवाइयाँ पहोंचाता हूँ और पैसों का इन्तजाम करके तुझे छुड़ाने वापस आता हूँ। मैंने तुरंत हाँ कह दी और मेडिकल स्टोर के काउन्टरके एक कोने में जाकर खड़ा हो गया। दुकानदार ने भी सभी दवाई फटाक से निकाल कर दे दी और आलोक से कहा, 'जल्दी पैसे ले आओ और अपने भाई को छुड़ाकर ले जाओ।' आलोक में पापा के लगभग सारे गुण हैं, वो बहोत जल्द निर्णय लेता है और जोखिम लेने से बिलकुल नहीं डरता है। उसका ये गुण उसे बहोत आगे पहोंचाएगा, ये मेरा विश्वास है।

मैं मेडिकल स्टोर की एक तरफ बैठा रहा, आलोक ने पापा तक दवाइयाँ पहोंचाई। तब तक उमेश भी आ चुका था। डॉक्टरों ने पापा को कोमा से बाहर निकालने के सारे प्रयास कर लिए थे। थक-हारकर उन्होंने कहा कि उन्हें पापा को लाईफ सपोर्ट सिस्टम, यानी वेन्टीलेटर पर रखना पड़ेगा। उसका खर्च उन्होंने कुछ दस हजार के आसपास कहा। आलोक तुरंत तैयार हो गया।

अब तक शांत बैठी मम्मी ने आलोक से कहा कि उन्होंने अपनी आँखों के सामने पापा को दम तोड़ते देखा है । डॉक्टर का तो काम है कि जब तक पेशन्ट की जान न निकल जाए तब तक उसे बचाने का प्रयास करते रहना । इतना पैसा जो होता तो पापा कोमा में जाते ही नहीं। उन्होंने डॉक्टरों से पापा को वेन्टीलेटर पर रखने से इन्कार कर दिया। उस वक्त परिवार के और भी सदस्य हाजिर थे, सब हमारी मजबूरी पर रोते रहे।

डॉक्टर और हम सारे परिवार के लोग पापा की साँस अटकने की राह देख रहे थे। उस वक्त तक मैं मेडिकल स्टोर में ही था। उमेश कहीं से कुछ पैसे लेकर आया । आलोक वो पैसे लेकर मेडिकल स्टोर में आया, बिल चुकाया और फिर हम दोनों भागकर अस्पताल आए । मैं भी मम्मी के निर्णय से सहमत था । हम सब बैठे- बैठे रोने के सिवा और कुछ नहीं कर पाए।

सुबह की शाम हुई । मैंने देखा कि एक नौजवान लड़का जो डायालीसीस पर था, दर्द से चिल्ला रहा है । उसकी माँ पास ही में थी पर वो उसे बस में नहीं कर पा रही थी। मैं तुरंत उठकर गया और उस बूढी औरत को मदद करने लगा, काफी जहमत के बाद उस लड़के की डायालीसीस पूरी हुई, बस उसी वक्त दक्षिण मेरे पास आया और कहा, 'चल रोक्सी, मामा पापा मर गए।' पापा की साँस अटक गई थी और डॉक्टरो ने उन्हे मृत जाहिर कर दिया था।

आँखों में आँसू रोकना चाहूँ तो भी नहीं रोक पा रहा था। दिल के किसी कोने में अस्पताल के डॉक्टरो पर भी गुस्सा था कि उनकी खामी युक्त डायालीसीस मशीन की वजह से पापा की मौत हुई। मैंने सोचा कि डॉक्टरों के खिलाफ पुलीस केस करवा दूँ, पर बाद में लगा कि उसके लिए भी खर्चा होगा। समय जाएगा और हम पापा के मृत देह को लेकर कहाँ-कहाँ फिरेंगे, उन्हें मौत के बाद तो शांति दें। गुस्से को पीकर मैंने पापा के शरीर को वहाँ से ले जाने की सोची । मैं और आलोक स्कूटर पर रोते-बिलखते घर पहोंचे। घर पर संदेशा पहोंच गया था कि पापा की मौत हो चुकी है, तो कल्पना और शेफाली पहले से ही रो रही थीं। उनको देखकर हम दोनों भी फूट-फूटकर

रोने लगे।

पापा का शव घर लाया गया। अंतिम विधी के खर्च के लिए उमेश ने शेफाली का हार जो उसे दहेज में दिया था, उसे गिरवी रखा और पैसों का बन्दोबस्त किया। उमेश भी रोता-बिलखता काम कर रहा था। पापा उसके सगे मामा थे और उमेश की पढ़ाई-लिखाई और पाल-पोस हमारे ही घर पर हुई थी। पापा ने उसे बचपन से ही कहा था, 'तुझे कोर्ट में मेरी जगह लेनी है और काला कोट पहनना है।'

तीन दिनों की अंतिम विधि खत्म हुई और जीवन को वापस पटरी पर लाने के लिए हम सोचने लगे। 'बार काउन्सिल ऑफ गुजरात' की ओर से हमें पचास हजार रुपए मिले जिससे व्याजवालों को उनके मूल में से रकम दी और कहा कि ब्याज की चढ़ी हुई रकम के लिए हमें माफ करें। कुछ लोग माने कुछ नहीं माने। न माननेवालों में दूर के रिश्तेदार ज्यादा थे। ये पचास हजार रुपए के दावे की सारी कार्यवाही पापा ने मुझे बताई थी। उन्होंने सारे कागज तक भरकर रखे थे और कहा था कि बस इसके साथ मृत्यु का प्रमाणपत्र जोडकर सारा सेट 'बार काउन्सिल' के चेयरमेन को दे देना, कुछ दिनों बाद वो हमारे बैंक के खाते में पैसे जमा करवा देंगे। वो पैसों से किसको कितना देना है उसके प्रावधान भी वो मुझे समझाकर गए थे। वो मुझे ये सारी चीज़ें इस तरह से समझाते थे जैसे कि वो कहीं बहार गाँव घूमने जा रहे हों और कुछ ही दिनों बाद वापस आनेवाले हों।

जब उनके एक मित्र, प्रदीप अंकल को मैंने 'बार काउन्सिल' की फाईल की बात बताई तो वो सुनते-सुनते रो पड़े और तुरंत खड़े होकर फाईल की ओर देखा, उसे सलाम किया और कहा, 'रसीक, अपने मरने की बात को इतनी सहजता से तुम ही ले सकते हो।'

अब पापा के बगैर जिंदगी कैसी रहेगी ये देखना था। आलोक, शेफाली, मम्मी, कल्पना और तरुण का चेहरा हमेशा मेरे सामने रहता। 'बूधन थियेटर' की प्रवृत्तियाँ काफी समय तक बंद रहीं। मैंने सोचा कि अब पापा नहीं हैं तो मुझे नाटक वगैरे छोड़ देना चाहिए, पर हमारे बहोत प्रयास के बावजूद भी मैं

और कल्पना 'बूधन थियेटर' छोड़ नहीं पाए। अब तक 'बूधन थियेटर' लायब्रेरी ग्रूप के नाम से ही जाना जाता था। हम लोग लायब्रेरी में सक्रीय रहे, बूधन की नाटको में भी जाना शुरू किया । फिर से नाटक के परफॉर्मेन्स शुरू हुए । पर अब भी 'बूधन थियेटर' को समाज के लोग न तो स्वीकार करते थे और न ही नाटक को सम्मान देते थे। नाटक को हमेशा फिल्मों के साथ कम्पेयर करते।

मेरे पास नौकरी नहीं थी इसलिए मैंने देवी सर से उनकी 'भाषा संस्था' में नौकरी करने की अरज़ी की । उन्होंने मान लिया और मुझे बरोडा रहकर नौकरी करने की अनुमति दी। तीन हजार की मासिक तनख्वाह में मैं नौकरी करने लगा । हर शनिवार एक बार घर आता। पर फिर मुझे वापस अहमदाबाद जाना पड़ा। यहाँ की सारी कमाई उन लोगों को दी जिन्हें व्याज की रकम देनी बाकी थी । घर का खर्च तो मम्मी और कल्पना की कमाई से ही चलता था ।

उस वक्त मेरे लिए सबसे बड़ा काम आलोक का एन.एस.डी. में एडमीशन करवाना था, उसे संभालना था, ताकि वो किसी भी गैरकानूनी काम की तरफ न मुड जाए। उसका स्वभाव काफी चंचल होने की वजह से वो किसी भी चीज़ की तरफ बहोत जल्दी आकर्षित हो जाता है। आलोक एन.एस.डी. की तैयारी में लगा था । वर्ष २००३ में उसने पहली बार एन.एस.डी. की परीक्षा दी । दक्षिण और सौम्य की मदद से वो प्रथम राउन्ड तो पास कर गया पर दिल्ही के सेकन्ड राउन्ड में फेल हो गया।

घर में फिर से जैसे मातम के हालात हो गए थे। पर सौम्य की प्रेरणा से आलोकने दूसरे साल पूरे जोर से फिर से परीक्षा दी । और तेरह साल बाद अहमदाबाद के इस युवक को एन.एस.डी. में एडमिशन मिला । आलोक तीन साल के लिए एन.एस.डी. चला गया।

तब मेरे पास न तो कोई नौकरी थी और न ही कुछ काम । मैंने एक एन.जी.ओ. के प्रोजेक्ट में तीन हजार प्रति महिने की तनख्वाह पर नौकरी की, पर वो प्रोजेक्ट कुछ ही महिनों का था, इसलिए कुछ समय बाद मैं फिर बेकार हो गया था। इस वक्त तक मैंने पत्रकारिता में डिप्लोमा इकसठ प्रतिशत

से हासिल कर लिया था। उसी के आधार पर मैंने ई.टी.वी. गुजराती में नौकरी के लिए अर्जी की । मुझे तीन हजार रूपए की नौकरी मिली पर हैदराबाद में रहने की शर्त के साथ। मैंने सौचा कोई और नौकरी तो है नहीं तो क्युं न वहाँ जाकर थोड़ा बहोत पैसा घर भेजा जाए।

हैदराबाद की 'रामोजी फिल्म सीटी' देखकर पहले तो बहोत अच्छा लगा पर धीरे-धीरे होम सीकनेस होने लगी। घर की चिन्ता सताने लगी, मम्मी को कोई ब्याजवाला परेशान तो नहीं कर रहा होगा, किसी पुलीसवाले ने मम्मी को भट्ठी निकालते वक्त पकड़ तो नहीं लिया होगा ? क्या कल्पना और तरुण मेरे बगैर रह पाएँगे ? इन सारे प्रश्नों से परेशान होकर मैं तीन महिने बाद अहमदाबाद लौट आया।

वापस आकर फिर से मैंने और कल्पना ने मल्लिका दीदी के द्वार खटखटाए। उन्होंने मुझे उनके 'सिवीक कम्युनिकेशन' में एक कुकींग शो बनाने और कल्पना को उस शो को एन्कर करने का काम दिया। ये प्रोग्राम डी.डी.ग्यारह यानी डी.डी. के गुजराती प्रसारण के लिए था । इससे कल्पना और मैं मिलकर कुछ पाँच हजार रुपये कमा लेते । कुछ समय तक हमें ठीक-ठाक काम मिल गया।

पर फिर एक और समस्या ने हमें घेर लिया। दक्षिण के भुवा के लड़के का किसी के साथ झगड़ा हो गया और उस लड़के ने उसे बहोत मारा। मामला पुलीस तक पहोंच गया और दक्षिण का नाम जानबूझ कर एफ.आई.आर. में डाला गया। 'बूधन थियेटर' की पुलीस विरोधी नाटकों की वजह से पूलीस वैसे ही हमारी दुश्मन बन गयी थी और ऊपर से ये फरियादी दक्षिण का नाम बोल रहा था। पुलीस ने कुछ भी जांच-पडताल बिना दक्षिण और कई लोगों के खिलाफ एफ.आई.आर. रजिस्टर कर दी। एक ही दिन में दक्षिण की गिरफ्तारी हो गई और उसे साबरमती जेल में डाल दिया गया।

दक्षिण को आई.पी.सी. ३०७ के झूठे केस से बचाने के लिए मेरे मित्र, सुनील ने काफी महेनत की। हमने सेशन्स कोर्ट में एक बड़े एडवोकेट को रोका और उन्हें सारी सच्चाई बताई। महाश्वेता देवी, गणेश देवी और अन्य

लोगों ने एक प्रेस नोट जारी किया। अखबारों ने इस खबर को छापा । साथ ही साथ मैं बाहर दूसरी तमाम तैयारियाँ कर रहा था। उस वक्त मैंने अपने आप को काफी अकेला पाया, मेरी और दक्षिण की मदद के लिए कोई आगे नहीं आया। ये हमारी जंग थी और हमने इसे खुद ही लड़ना शुरू किया। बहोत मेहनत के बाद दक्षिण को पन्द्रह दिनों के बाद साबरमती सेन्ट्रल जेल से बाहर निकालने में हम सफल हुए।

इस सारी भागा-दौड़ी में मल्लिका दीदी के यहाँ मेरे काम पर काफी असर पड़ा । आखिर मुझे वो नौकरी भी छोड़नी पड़ी। बाद में मालूम पड़ा कि 'गुजरात समाचार' को नए रीपोर्टर चाहिए। मैंने सोचा कि क्युं न यहाँ किस्मत आजमाई जाए । तीन घंटो तक लाईन में खड़े रहने के बाद मेरी अर्जी साहब तक पहोंची। कुछ समय बाद मुझे 'गुजरात समाचार' से कॉल आया और 'गुजरात समाचार' के फीचर पेज के लिए मैं सीलेक्ट हो गया। 'बूधन थियेटर' में नाटक करते वक्त मिला आत्मविश्वास और बिन्दास बोलने की कला की वजह से मैं चुना गया था, पर मुझे गुजराती लिखनी ठीक से नहीं आती थी। साहब ने कहा, 'आप अंग्रेजी में लिखिए, हम उसका अनुवाद करवा लेंगे ।' पर नौकरी मिलने के बाद मैं अनुवादक नहीं रहा और मुझे गुजराती लिखना सीखना पड़ा।

इस नौकरी की वजह से समाज में मुझे फिर इज्जत मिलने लगी और घर में एक स्थायी आमदनी शुरू हुई। शुरूआती दिनों में मुझे कुछ तकलीफें पड़ीं, पर बाद में सब कुछ ठीक होने लगा। पैंतीस सौ में शुरू की ये नौकरी मैं करीब तीन सालों तक करता रहा। इस नौकरी के दौरान मैं मुख्यधारा के समाज को काफी करीब से समझ सका, जान सका। हर रोज बहोत लोगों से मिलना होता, उन में बहोत से पुलीसवाले भी शामिल होते।

'गुजरात समाचार' की इस नौकरी के वक्त मुझे सही तौर से मालूम पड़ा कि छारा होकर नौकरी करना कितना मुश्किल है। कोई पुलीसवाला आप से तब तक ही ठीक से बात करेगा जब तक आप अपनी जाति उसे नहीं बताते। जैसे ही बताता कि मैं छारा समाज से हूँ कि तुरंत उनका रुख बदल जाता।

एक बार की बात है। २००१ की गर्मिओं में मैं 'साबरमती जेल' के ऐसीसटेन्ट जेलर का इन्टरव्यु लेने गया। वो बहोत अच्छी तरह से बात कर रहे थे और सारे प्रश्नो के उत्तर ठीक से दे रहे थे। बात करते-करते उन्होंने मुझसे मेरी जाति पूछी। मैंने कहा, 'मैं छारा समाज से हूँ।' उन्होंने तुरंत कहा, 'तुम छारा कैसे हो सकते हो ? छारा ऐसे थोड़ी ही होते हैं? वो ऐसे कपड़े पहन के थोड़ी घूमते हैं ?' मैंने उन्हें विश्वास दिलाया कि मैं छारा हूँ पर उसके बाद उन्होंने मेरे प्रश्नों का उत्तर देना ठीक नहीं समझा। ऐसे बहोत से किस्से नौकरी के दौरान बनते गए। पर इन में से कुछ ऐसे पुलीसवाले भी मिले जिन्होंने मुझे आगे बढ़ने की हिंमत दी।

बहोत बार बाहरी समाज के मित्र और मेरे बॉस भी मुझसे कहते, 'आखिर तुझे अपनी जाति छुपाने में क्या हर्ज है ? अगर कोई पूछे तो तुम कह दो कि तुम मराठी हो, क्युंकि तुम्हारी सरनेम गागडेकर हैं, जिसमें 'कर' आता है जो ज्यादातर मराठीओं की सरनेम में जुडता है। मैं हमेशा उनसे कहता, 'आखिर क्युं छुपाऊँ मैं मेरी जाति, सिर्फ इसलिए क्युंकि ये क्रिमीनल ट्राइब मानी जाती है, या फिर इसलिए कि ये समाज आज तक पिछड़ा रहा है ? अगर ये दोनों बातें ही इसका कारण हैं तो मुझे अपनी जाति बिलकुल नहीं छुपानी चाहिए क्युंकि मैं चाहता हूँ कि लोगो को भी मालूम पड़े की वो जमाने चले गए जब छारा सिर्फ क्रिमीनल हुआ करते थे। ये नया जमाना है जिसमें कोई छारा आपके साथ कंधे से कंधा मिलाकर आपके साथ स्पर्धा करेगा। आज अगर मुझे ये तकलीफ का सामना करना पड़ रहा है तो ठीक है, कल हमारी आनेवाली पीढ़ी को तो ऐसी किसी बात का सामना नहीं करना पड़ेगा। आखिर हमें भी बाहरी समाज में जाकर नौकरी करने का मौका मिलना चाहिए।'

नौकरी में बहोत ज़्यादा समय जाते होने के कारण 'बूधन थियेटर' से मेरा ध्यान कम होता गया। पर कल्पना बराबर उस में लगी थी। वो 'बूधन थियेटर' के हर नाटक में होती एवं हर प्रोग्राम में भी भाग लेती। हाँ, पर जब भी अंग्रेजी में कोई कार्यक्रम होता तो वो अपना सर पकड़कर बैठ जाती। बहोत देर तक अंग्रेजी सुनते-सुनते उसका सर जकड़ जाता और सर दर्द होने

लगता। 'बूधन थियेटर' के सभी कलाकार एक परिवार की तरह रहने लगे, कलाकारों के बीच की बॉन्डींग बढ़ती गई। हम सब एक दूसरे की शादी, जन्मदिन, त्यौहार वगैरे में शामिल होने लगे। 'बूधन थियेटर' में मैं सबका भाई और कल्पना सबकी भाभी बन गई, दक्षिण सबका 'सर' हो गया था।

हँसी-मज़ाक, मौज-मस्ती के लिए हम सभी के पास सिर्फ एक ही जगह थी, 'बूधन थियेटर' का प्लेटफोर्म। और हाँ, ये प्लेटफोर्म छारानगर के मेरे मकान की छत पर था। पहली नाटक की शुरूआत से ही हमारी छत 'बूधन थियेटर' की रीहर्सल.की जगह रही है। कुछ कलाकार तो इतनी मस्ती करते की मेरी और दक्षिण की चाल, बातचीत और एक्टिंग की भी कॉपी करने लगे। हम सभी 'बूधन थियेटर' के और करीब आने लगे थे। इस वक्त 'बूधन थियेटर' में काफी नए लोग भी शामिल हुए। दक्षिण की बहन चेतना हमारे साथ जुडी। कल्पना के बाद 'बूधन थियेटर' में चेतना दूसरी महिला कलाकारा थी। कल्पना और चेतना बाद में काफी अच्छी सहेलियाँ बन गई। जब क्रांति का जन्म होने को था तब कल्पना की जगह चेतना श्यामली का किरदार करती थी।

हमने तरुण और क्रांति के जन्म में करीब सात साल का अंतर रखना मुनासिब समझा। मैं दूसरा बच्चा कभी चाहता ही नहीं था पर मम्मी और कल्पना की जिद के आगे मैं विवश हुआ। क्रांति की उम्र अब आठ साल की है। उसे अपना नाम 'बूधन थियेटर' से ही मिला है। वर्ल्ड सोशियल फोरम नामक एक कार्यक्रम में मैं और कल्पना क्रांति को लेकर 'बूधन नाटक' परफॉर्म करने मुंबई गए थे। गर्मिओं के उन दिनों में पच्चीस दिन की बच्ची के साथ सफर करने का पागलपन या फिर हिम्मत हमें 'बूधन थियेटर' से ही मिली। वर्ल्ड सोशियल फोरम में उस वक्त हिन्दी और अंग्रेजी, यूँ दो भाषाओं में नाटक का चयन हुआ था। शो तो काफी अच्छा रहा पर शो के बाद अचानक ही हमारी बच्ची ने इतना रोना शुरू किया कि हम सभी के होश उड़ गए। हम सोचने लगे कि आखिर अचनाक इसे क्या हुआ है। कल्पना उसे लेकर पेड़ की ठंडी छाँव में थोड़ी देर के लिए बैठी। धीरे-धीरे उसकी रोने की

आवाज़ कम होती गई। ऐसे तो कई शो कल्पना और मैंने बच्चो के साथ किए हैं और हर शो के साथ एक अलग सी याद जुड़ी है।

वर्ल्ड शोसियल फोरम में नाटक करने के बाद हमने देवी सर से प्रार्थना की कि वे हमारी बच्ची का नाम रखे। कुछ देर सोचने के बाद उन्होंने बूधन के उस फोरम को याद किया जिसमें हम सभी सीढ़ियाँ बनाते हैं और कल्पना हाथ में मशाल लिए भागती हुई आती है और सीढियाँ चढ़ने के बाद जोर से कहती है, – 'क्रांति'। देवी सर ने फिर हँसते हुए कहा, 'लो कल्पना, कम से कम तुम्हें तो तुम्हारी क्रांति मिल गई।' इस तरह वर्ल्ड सोशियल फोरम में क्रांति का जन्म हुआ है।

इसी तरह एक बार २००० के साल में जब तरुण तीन साल का था और भोपाल में हम 'एन्काउन्टर' परफॉर्म कर रहे थे, तब एक सीन में आलोक, जो की एक इन्सपेक्टर बना था, वो मुझे काफी मारता है। पूरे सीन में काफी शोर शराबा होता है और अंत में जब आलोक मुझे मारकर चला जाता है तब मैं खूब रोता हूँ और धीरे-धीरे मेरी आवाज धीमी होती जाती है। जैसे ही मेरी आवाज कम हुई पास में बैठे तरुण की आवाज आई, 'पप्पा, पप्पा, मुझे मुत्तु करने जाना है।' रोने की जगह ऑडियन्स हँसने लगी क्युंकि वहाँ इतनी शांति हो चुकी थी कि तरुण की आवाज अंत में बैठा दर्शक भी आसानी से सुन पा रहा था। दक्षिण, जो कि ढोल पर बैठा था, उसने तरुण को उठाया और उसे मुत्तु करने के लिए ले गया।

'बूधन थियेटर' के हर परफॉर्मेन्स के साथ एक याद जुड़ी है, वो बुरी हो या अच्छी पर 'बूधन थियेटर'का हर शो एक नई कहानी कहता है। 'बूधन थियेटर' के इसी जज्बे ने इसे एक मूवमेन्ट में बदल दिया है । 'भोमा' नाटक के प्रथम शो के वक्त डी.ए.आई.आई.सी.टी. में हमारे इस लायब्रेरी ग्रूप को औपचारिक तौर पर देवी सर ने 'बूधन थियेटर' का नाम दिया। बस, तब से 'बूधन थियेटर' में काफी लोग शामिल होते गये । 'बूधन थियेटर' के बारे में जानने के लिए अन्य देशो से लोग आते गए, कितने ही लोगो नें 'बूधन थियेटर' पर रिसर्च किया। अमरिका की शाश्वती तालुकदार और करीम

फ्रीडमेन ने 'बूधन थियेटर' पर 'हूच एन्ड हेमलेट' नाम से डॉक्युमेन्टरी फिल्म भी बनाई।

'गुजरात समाचार' और 'बूधन थियेटर', ऐसे दो पहीयों पर मेरा जीवन आगे बढ़ता गया। 'गुजरात समाचार' की नौकरी में वैसे तो कोई तकलीफ नहीं थी। पर मुझे ये सवाल रहता कि पापा ने मुझे अंग्रेजी माध्यम में पढ़ाया था तो मैं गुजराती अखबारों में क्युं काम कर रहा हूँ ? ये प्रश्न मुझे सताता रहा। घर के हालात ठीक करने के लिए जो सहारा चाहिए था वो तो इस नौकरी से मिल रहा था, पर मुझे इस से संतोष नहीं था। मैं कुछ ऐसा करना चाहता था जो मुझे अंग्रेजी भाषा के नजदीक रखे।

मैंने बहोत जगह इन्टरव्यु दिए, कई बिजनेस न्युझ पेपर में जाकर मिला पर किसी ने गुजराती अखबार के रीपोर्टर को अंग्रेजी अखबार में लेने की हिंमत नहीं की। मैं मेरे एक इन्टरव्यु का अनुभव यहाँ बताना चहाता हूँ। एक न्युज पेपर का इन्टरव्यु मुझे अच्छी तरह से याद है। दिल्ली से आए एक सीनीयर एडीटर ने मेरा इन्टरव्यु लिया। सरनेम मे 'गागडेकर' होने की वजह से उन्होनें पूछा, 'क्या आप मराठी हो?' मैंने कहा, 'नहीं मैं मराठी नहीं हूँ मैं छारा हूँ।' उन्होने ज्यादा जानना चाहा, वो उत्तर भारत से थे वहाँ छारा को साँसी के नाम से जाना जाता है। इसलिए मैंने कहा, 'मे साँसी हुं।' इन्टरव्यु में ऐक लोकल रेसीडेन्ट एडीटर भी थे जो मुझसे सवालात कर रहे थे। उन दोनों ने सारी बाते बाजू में रखकर मुझसे छारा और साँसी के बारे में पूछा। शायद इन्टरव्यू.का सबसे ज्यादा समय मुझे दिया गया। मैंने उन्हें डीनोटीफआइड और घुमन्तु जनजातियों की परिस्थितियों और छारा समाज के संघर्ष एवं अन्य समाजों में छारा की अस्वीकृति की बात बतायी। बाद में मुझे अंग्रेजी में कुछ लिखने को कहा गया। मैनें सोचा कि मेरा इन्टरव्यु बहोत अच्छा हुआ है और मुझे ये नौकरी मिल जाएगी। पर सच्चाई कुछ और ही थी। मेरा एक दोस्त उसी अखबार में काम करता था। जब मैंने उसे इन्टरव्यू के बारे में बताया तो उसने मुझे डाँटा और कहा, 'तुझे क्या जरूरत थी अपनी कौम के बारे में बात करने की?' उससे पता चला कि मेरा सीलेकशन फाईनल राउन्ड तक

हो चुका था पर मेरी जाती और मेरे विचारों की वजह से मुझे नोकरी नहीं दी गई थी। खैर, उस वक्त मेरी तनख्वाह कुछ चार हजार रुपए थी और इसके अलावा बारह सौ रूपए मोबाईल अलाउन्स मिलता था। कुल मिलाकर घर का सारा खर्च आसानी से निकल जाता था। घर की हालत कुछ सुधरते होते ही सबसे पहले मैंने मम्मी को शराब निकालने से मना कर दिया।

मेरा मन अंग्रेजी अखबार की खोज में लगा हुआ था और इसके लिए मैंने अहमदाबाद की लगभग हर न्यूज पेपर ऑफिस के दरवाजे खटखटा दिए थे। आखिरकार,'भास्कर ग्रूप' द्वारा 'डी.एन.ए. बिझनेस न्युज़ पेपर' के आगमन की सूचना मिली। मैंने ठान ली की इस अखबार में नौकरी कर के ही दम लूँगा। श्याम पारेख जो इसके एडिटर थे, मुझे पहले से ही जानते थे। पर वो भी मुझे लेने से जरा इतरा रहे थे, क्युंकि मैं एक गुजराती अखबार में काम करता था। उनकी दो शर्तें थीं। एक कि तनख्वाह सिर्फ ग्यारह सौ मिलेगी और दूसरी तीन महीने के बाद यदि वो मेरी अंग्रेजी से संतुष्ट नहीं हुए तो वो मुझे बिना किसी चेतावनी के नौकरी से निकाल सकते हैं। डरते-डरते मैंने ये चुनौती स्वीकार कर ली। 'गुजरात समाचार' की नौकरी छोड़कर मैं अगस्त २००६ में भास्कर ग्रुप के डी.एन.ए. मनी में जुड़ गया।

इस दौरान हमने आलोक की शादी करवा दी थी और उसके जीवन में रुक्ष्मणी आ चुकी थी। आलोक 'राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय' के दूसरे साल में था जब उसकी शादी हुई। तीसरे साल वो रुक्ष्मणी के साथ दिल्ही रहने चला गया। २००६ के मध्य में उसकी कॉलेज की पढाई खत्म हुई और उसने मुंबई जाने की सोची। उसकी सास से मिले कुछ रुपए उसके पास पड़े थे। उन रुपयों की मदद से उसने अपने एक प्रौफेसर का घाटलोडिया के देवकुंज अपार्टमेन्ट में बहोत कम पैसों में घर खरीदा था। वो मकान वैसे तो कुछ समय तक किराए पर दिया हुआ था पर २००६ में जब आलोक ने मुंबई जाने का तय किया तो उसने मुझे उस मकान में सारे परिवार के साथ रहने के लिए कहा। उस वक्त 'बूधन थियेटर' को लेकर कल्पना खूब चिंतित थी। वो 'बूधन थियेटर' छोड़ना चाहती थी क्युंकि लोगों की व्यर्थ बातें सुन-सुनकर

वो परेशान हो चुकी थी। छारानगर को छोड़कर कहीं दूसरी जगह रहना पहले तो मुझे मुश्किल लगा, पर बाद में सोचा कि यदि बच्चों को अच्छी स्कूल और कल्पना की समृद्धि को पूरा मौका मिले तो ये कोशिश में कुछ हर्ज नहीं है। हम देवकुंज अपार्टमेन्ट में शिफ्ट हो गये और छारानगर का मकान किराए पर दे दिया। वो किराया, जो थोड़े ब्याजवाले बाकी थे उनका मुँह बंद करने के लिए जाता था ।

पर नए घर में आने बाद तो परिस्थिति कुछ और ही थी । आसपास के लोगों को जब मालूम पड़ा कि हम छारा समाज से हैं तो पूरी सोसायटी ने हमारा विरोध किया। सोसायटी में हमसे या हमारे बच्चों से कोई बात तक नहीं करता था। पूरी सोसायटी में बार-बार, छोटी-छोटी मिटींग होने लगीं। सभी लोगों का एक ही वोट था की इन छाराओं को यहाँ से बाहर निकालो। जब हमें ये मालूम पड़ा तो मुझे पहले गुस्सा आया पर बाद में सोचा कि ये होना तो हमारे लिए आम बात है । आखिर इस मुख्य धारा के समाज प्रवाह को यही तो बताना है कि हम भी उन्हीं की तरह हैं, और हम भी अच्छी जीवन शैली जीने की आकांशा रखते हैं। मैंने और कल्पना ने एक नई लड़ाई की तैयारी शुरू कर दी। पर जिस प्रौफेसर से आलोक ने ये मकान खरीदा था उन्होंने बिनती की कि हम कुछ ऐसा-वैसा न करें, वरना उन्हें तकलीफ पड़ सकती है।

आलोक ने मुझसे कहा, 'भाई, कोई दूसरा मकान ढूँढते है।' मुझे छारानगर की कमी बहोत खल रही थी, मैंने सोचा कि हम वापस छारानगर चले जाएँ । पर उसी दौरान हमने एक और फ्लैट देखा बैंक में होम लोन की अर्जी की जो मंजूर हो गई। डाउन पेमेन्ट भरकर हम नए मकान में शिफ्ट हो गए। अब तक हम इसी मकान में रह रहे हैं । यहाँ भी कभी-कभी छारा के नाम पर छोटी-मोटी नोक-झोंक होती है पर अंशतः यहाँ पर शांति है।

अब घर की हालत काफी अच्छी है पर हम तीनों के रास्ते अलग-अलग हो चुके हैं। शेफाली एक कॉल सेन्टर में टीम लीड़र है और उमेश के साथ छारानगर में ही रहती है। उसकी दो लडकियाँ हैं, दोनों अंग्रेजी माध्यममें

पढतीं हैं । जिस स्कूल में पापा ने हमें पढ़ाया उसी स्कूल में वो भी पढ़ रही हैं। आलोक मुंबई में फिल्मी सितारों के साथ एक्टिंग करने के इरादे से गया था । गुजराती कमर्शीयल नाटकों में अपना सिक्का जमाने के लिए अपना लक्ष्य पक्का कर चुका था पर अब तो अहमदाबाद लौट आया है । मम्मी मेरे साथ घाटलोडिया में रहती है, जब कि तरुण और क्रांति मेमनगर बिस्तार की 'एच.बी. कापडिया और निर्माण' स्कूल में पढ़ते हे ।

कल्पना ने अब तक कई गुजराती फिल्मों और सीरियलों में काम कर चुकी है। वो 'बूधन थियेटर' में भी काफी सक्रिय है। उसका ज्यादातर समय छारानगर और मणिनगर की महिलाओं के लिए रोजगारी के साधन खड़े करने में जाता है । तरुण और क्रांति की परवरीश में भी उसका काफी समय बीतता है।

मैं अब डी.एन.ए. अखबार में काम करता हूँ । यहाँ मैं क्राईम रिपोर्टर हूँ। मुझे पापा ने पाला, मुख्यधारा से निकला और 'बूधन थियेटर' ने सँभाला। अब भी काफी लंबी लड़ाई बाकी है, ये तो शुरूआत है, हो सकता है आगे और लंबी चढ़ाइयाँ हों । मुझे लगता है कि भगवान ने हमें किसी सहज चीज़ के लिए बनाया ही नहीं है।

मैं बहोत बार सोचता हूँ कि अगर भगवान कहीं है और वो हमारी सुनता हो तो मैं उससे सिर्फ एक बार एक ही चीज़ माँगना चाहता हूँ। 'हे भगवान, क्या ये संभव है कि एक बार मेरे पापा आएँ और हमें इस हाल में देखें ? क्या ये संभव है कि वो एक बार देखें कि जो सपने उन्होंने हमारे लिए देखे थे वो सपने अब पूरे होने को हैं । जो गरीबी हमने देखी है वो गरीबी से हम उभर रहे हैं ? समाज के लिए उनके जो सपने थे, स्त्री शिक्षण छारा समाज की प्रतिभा को बाहरी समाज तक ले जाने का प्लेटफॉर्म, या फिर बाहरी समाज को बताना कि हम भी उन्हीं के जैसे हैं वो सारे सपनों को पूरा करने के लिए हमने जो प्रयत्नों की शुरूआत की है, वो कोशिश हमारी आनेवाली पीढ़ियों तक चलती रहेगी।

v v v

ज़रा रुकिए, मैं कुछ कहना चाहता हूँ

आलोक गागडेकर

आज से करीबन चौदह साल पहले अहमदाबाद शहर के राजमार्ग से थोड़ा हट कर एक कच्ची सड़क उस इलाके से गुजरती थी जिसे लोग छारानगर के नाम से जानते हैं। उसी छारानगर की पेचीदा गलियों में, १९९८ में एक वृद्धा महिला ने कदम रखा।वो महिला इस देश की जानी-मानी साहित्य लेखिका हैं। लेकिन हमारे लिए उस दिन वो सिर्फ एक साधारण महिला ही थी। जी हाँ, मैं महाश्वेता देवी की बात कर रहा हूँ। हालाँकि, छारानगर के इतिहास में इस से पहले कई राजनेता एवं समाज सुधारक आ चुके थे। लेकिन महाश्वेता देवी ने छारानगर के आनेवाले भविष्य के बारे में बात की थी, नहीं कि गुज़र चुके लोगों के बारे में। उस वक्त मैं करीबन पंद्रह साल का था और दसवीं कक्षा में फेल हो गया था। तब पता चला था कि एक महिला शिक्षा सम्बन्धित सवालों पर गौर फरमा रही है। ये मेरे लिए बहोत आश्चर्यजनक बात थी। उससे भी अधिक ताज्जुब की बात ये थी कि छारानगर के कई शिक्षित युवा उनके इर्द- गिर्द खड़े होकर कह रहे थे कि उन्हें एक पुस्तकालय की ज़रूरत है। वो पुस्तकालय जिसे छारानगर में बसाने का सपना चालीस साल पूर्व सींचा गया था लेकिन राजनैतिक गुत्थियों में वो सपना हमेशा ऐसा कस जाता कि पुस्तकालय में से पुस्तक शब्द कहीं लुप्त ही हो जाता था। पर उस दिन महाश्वेता देवी के बीच पुस्तकालय शब्द का सीधा मतलब था–ज्ञान की वृद्धि करना। महाश्वेता देवी के साथ उस वक्त और भी कई लोग थे–गणेश देवी, लक्ष्मण गायकवाड और अन्य कई जाने-माने शख़्सियत। मुझे समझ नहीं आ रहा था कि वो अपनी बातों में 'डीनोटीफाइड और नॉमैडिक ट्राइब' शब्दों का इस्तमाल क्युं कर रहे थे। कभी वो 'भटकते घुमन्तु जनजाती' जैसे शब्दों

का भी प्रयोग करते । ये शब्द मेरे कानों में पहली बार सुनाई दिए थे । मैंने अपने सर्टिफिकेट में हिन्दू छारा के अलावा कोई भी समुचा नाम पूरी जमात का नहीं देखा था । मैं जानता था कि छारानगर की धरती पर गांधी से गांधी तक जितने भी लोग आए उनके कुछ न कुछ अंगत स्वार्थ हुआ करते थे । पर वैसा कोई अंगत स्वार्थ मुझे इन लोगों में नज़र नहीं आया । क्युंकि ये न तो किसी राजनैतिक दल से जुड़े थे और न ही ऐसा कोई दल बनाना चाहते थे । बल्कि, ये सारे लोग तो कला प्रेमी थे । और अगर कला से सम्बन्धित कोई अंगत स्वार्थ रहे भी सही तो वो समाज के लिए बहोत लाभदायक होता है । वही तंदुरस्ती आज दस सालों के बाद हमारे शरीर में परिपक्व है ।

इन तेरह सालों के सफर में हम एक ही बात समझने की कोशिश कर रहे थे, कि ये 'डी.एन.टी.'क्या है? उसी को जानने समझने के लिए न जाने कितनी अन्य बातों को हमने जाना । पुस्ताकलय का नाम 'मानसींग छारा पुस्तकालय' घोषित हुआ । पुस्तकालय में रोजिन्दा मिलने पर हम इन्हीं बातों को समझने का प्रयास करते । महाश्वेता देवी कला जगत से जुडी हैं इसलिए उन्होंने हमें डी.एन.टी.- एन.टी. का मतलब कुछ नाट्यात्मक ढंग से समझाने का प्रयत्न किया । उस नाट्यात्मक ढंग में एक नाटक छिपा हुआ था । उस नाटक में 'बूधन' नाम का एक डी.एन.टी. था । उसमें 'बीवी-बच्चे', 'पुलीस', 'जेल', 'रिमान्ड', 'कचहरी', 'आत्महत्या', ऐसे अजीबो गरीब शब्द हमें सुनाई दे रहे थे । वो कहानी उतनी ही सच्ची थी जितनी कि हमारे घर की बनी हुई कच्ची शराब सच्ची होती है । उस कहानी में 'बूधन सबर' के छीने गए जन्मसिद्ध अधिकार की बात थी। हमें दिए गए 'बॉर्न क्रीमिनल लेबल' की बात थी । हमें उस कहानी में सिर्फ अपने आप को जोड़ना बाकी था । उस दिन मुझे पता चला कि आज़ादी का मतलब झंडे को सलामी देना और उसके बाद टॉफी चूसना नहीं है । मुझे एहसास हुआ कि १५ अगस्त १९४७ कि आज़ादी हमारी नहीं थी । हमारी आज़ादी इतिहास के पलों पर किसी और दिन मुकर्रर हुई थी। वो दिन था ३१ अगस्त १९५२ । सेटलमेन्ट का कड़वा इतिहास इससे पहले मैंने कभी जानना जरूरी नहीं समझा था । मुझे कभी

इसकी ज़रूरत भी महसूस नहीं हुई थी। क्युंकि उस वक्त मेरे पास सोचने के लिए और बहोत कुछ था। पिताजी की बीमारी, उनकी जेल, कर्ज आदि चीजों में मैं हमेशा उलझा रहता था। लेकिन जब मैंने अपनी उलझनें और कलकत्ता में रहनेवाले बुधन साबर की उलझनों को एक कर के दुबारा सोचना शुरू किया तो अपने आप को बड़ा सुलझा हुआ पाया।

हर व्यक्ति की ज़िन्दगी में एक वक्त ऐसा आता है जब वो अपने भविष्य की नींव रखता है। मेरी ज़िन्दगी में भी वो दिन आया। हमारी आज़ादी का जलसा, ३१ अगस्त १९९८ के दिन, जब हमने पहली बार आज़ादी के जलसे पर एक नाटक का मंचन किया। नाटक का विषय था गुलामी। नाटक था बूधन साबर पर हुए अत्याचार का। उसमें मैंने एक छोटी सी भूमिका अदा की थी हालाँकि उस नाटक में छोटे से छोटा काम भी बड़ी जिम्मेदारी का था। और ये जिम्मेदारी हमने बखूबी निभाई। यहाँ से मेरा एक और जन्म हुआ, ये जन्म था आलोक गागडेकर अभिनेता का जिसकी पैदाइश 'डीनोटीफाइड और नॉमैडीक ट्राइब्स राइट्स एक्शन ग्रूप.' से जुड़ी थी। बस उसके बाद नाटक का सिलसिला शुरू हो गया। हमारी भूमिकाएँ बदलती गयीं लेकिन हमारी विचारधारा कभी नहीं बदली। हमें ज़िन्दगी जीने का एक सहारा मिल गया था। शायद यही फ़र्क था किसी और व्यक्ति और महाश्वेता देवी के छारानगर आने में यहाँ हमारे बीच एक सांस्कृतिक पुल बनने की नींव डाल दी गई थी जिसमें हमने एक ऐसे थियेटर को जन्म दिया जिसका मकसद था 'बाय द डी.एन.टी., फॉर द डी.एन.टी. एन्ड ऑफ द डी.एन.टी.', जिसमें हम हमारी इन भावनाओं का नाट्य रूपांतर कर दूसरे भाई बंधुओं तक पहोंचाते रहे। इस सफर में हमारे साथ कंधे से कंधा मिलाने के लिए कई लोग जुड़ते गए जिनमें मल्लिका साराभाई, कैलाश पंड्या, सौम्य जोशी जैसे गुजराती रंगमंच की नामी हस्तियाँ भी शामिल हुईं।

हमारे नाटक का प्रेक्षकगण शुरूआत में सीमित था। फिर धीरे-धीरे वो संख्या बढ़ती गया। पहले सभी लोग हमें सहानुभूति से देखते । फिर उनके देखने का अंदाज बदल गया। धीरे-धीरे लोग हमें नाट्यकर्मी की नज़र से

देखने लगे । 'बूधन थियेटर' की बदौलत मुझे और भी नाटक मिलने लगे । मैंने अपने कॉलेज काल में गुजराती रंगमंच में काम किया जिसमें कई पारितोषक मुझे मिले । मेरा आत्मविश्वास बढ़ने लगा । एक तरफ राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय में अभ्यास करने की इच्छा आगे-पीछे होती रही । पर कभी माहौल इच्छा को मार देता तो कभी इच्छा खुद माहौल से हार जाती । दोनों ही सूरतों मे जीत हमेशा छारानगर की ही होती । मैं पहले प्रयास में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के आखरी इम्तिहान में असफल रहा। तब मुझे महसूस हुआ कि बाहर की दुनिया में कदम रखना बड़ा मुश्किल होता है।

नाटक का दौर चलता रहा। हमारी अभिनय क्षमता में कभी कोई कमी नहीं आई, उल्टे हम बड़ी-बड़ी भूमिकाएँ करने लगे । और एक दिन छारानगर के माहौल को मेरी इच्छा के सामने हारना पड़ा । २००३ में मेरा चयन राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के उन बीस विद्यार्थिओं में हुआ जो सारे एशिया में से चुने जाते हैं ।

इन गत सालों के दौरान मैं जहाँ कहीं भी गया, मेरी नींव में हमेशा बूधन थियेटर के मूल मौजूद रहे । मैंने जब राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय में अन्तर्राष्ट्रीय साहित्य पढ़ना शुरू किया तो मैंने पाया कि कहीं न कहीं हमारा 'बूधन' का पहला नाट्य मंथन जो ३१ अगस्त १९९८ में मंथित हुआ था, वे एक क्रांति की शुरुआत की आवाज़ ही थी । जब मैंने पढ़ा कि युरोप के इतिहास में रोमन साम्राज्य के पतन से लेकर अमरीका की खोज होने तक के समय को मध्यम युग कहा जाता है, तो मैंने अपने छारानगर के इतिहास में झांका। मैंने देखा कि परंपरागत के पास अपने आपको सर्वोतम समझने वाले अनपढ़ गंवार लोगों की परंपराओं का हुआ और मानसिंह छारा जैसे चित्रकला प्रेमी का जन्म हुआ । जब मैंने पुन:जागरण (रैनसां) युग के बारे में पढ़ा तो मैंने उसे अपने इतिहास से परे हटाकर नहीं देखा । वैसे इस दुनिया में पुन:जागरण का काल ई. ११०० माना जाता है जब इस दुनिया में कला जगत प्रेमियों ने ईश्वर से हटकर आम आदमी के बारे में सोचना शुरू किया । इससे पहले गाय को घास खिलाते हुए चित्र देखे जाते थे । लेकिन पुन:जागरण युग में एसे चित्र

बनाए गए जहाँ एक गरीब गाय की तरह खेती करता है। 'मोनालिसा' की मुस्कान भी उसी समय की देन है। लेकिन मेरी अपनी ज़िन्दगी में १९९८ का वो क्षण जब हमने महाश्वेता देवी, देवी सर और डी.एन.टी. आंदोलन के अन्य साथियों से पुस्तकालय माँगा, मेरी ज़िन्दगी का पुन:जागरण युग रहा है। हमने किसी मंदिर के लिए चंदा या विधवाओं के लिए आर्थिक सहायता नहीं माँगी। हमने माँगी ज्ञान की रसधार–एक पुस्तकालय।

१९९८ से २००३ तक, इन पाँच सालों में मैं नाटक सम्बन्धी बातों के अलावा कुछ भी सोचना पसंद नहीं करता था। तब मेरा एक ही मकसद था –'आई वान्ट टू बिल्ड माय टैलेन्ट'–अपने आप को राष्ट्रीय स्तर पर विकसित करना। जब २००३ से २००६ के दौरान मैं राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय में था तब भी मेरा यही ध्येय रहा। अपने आपको अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ले जाना चाहता था जब ७ मई २००६ के रोज़ एक नाटक की प्रस्तुति के लिए जर्मनी गया तब भी अपने कल को याद करते हुए मैंने इतना ही सोचा था कि १९९८ का वो मेरा बूधन थियेटर और जर्मनी के ये अंतरराष्ट्रीय थीयेटर फेस्टिवल के बीच दस साल भी नहीं गुजरे थे। अभी दो साल और बाकी थे।

२००५ में विवेक घमंडे ने एन.एस.डी. में प्रवेश लिया और यहाँ हमारी एक चूल बनी। एक दूसरे के साथ-सहकार ने हमें अपने आप के बारे में सोचना सिखला दिया है। यही सबसे बड़ी क्रांति है। अगर आपसे कोई पूछे की इन्डिया में पुन:जागरण कब आया था तो आप उन्हें छारानगर लेकर आइएगा। वो स्वयं अपनी आँखों से देख लेंगे।

२००६ को जब मैं राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय से स्नातक हुआ, तब मेरे मस्तिष्क में दो बडे अनुभवों का संचय था। एक नाटक की शुरूआत हुई ऐसे छारानगर का ग्रूप बूधन थिएटर और दूसरा, तीन साल अपने अभिनय को चमकाने का काम करनेवाले राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के प्रशिक्षण का। जब आप एक क्षेत्र में प्रशिक्षण प्राप्त कर लेते हैं तो आप पर लोगों की आशाएँ बढ जाती हैं। और वैसा ही मेरे साथ हुआ। पाश, धुमिल, गोर्की को पढकर मैं अपने निजी सपनों को संवारने के लिए मुंबई चला गया। फिल्मों में काम

करने के लिए, एक साल, दो साल, तीन साल संघर्ष करते हुए बीते। एक तरफ़ समाज की जवाबदारी तो दूसरी तरफ परिवार की। और अपने निजी सपने बम्बई में बंगला-गाडी, धन-दौलत जैसे भोतिक सुख सुविधा के संशाधन। इन्हीं निजी सपनों ने मुझे तीन साल तक कैद कर दिया एक वन-रूम किचन के भाडेवाले फ्लैट में।

मुंबई शहेर, जहाँ मेरे जैसे हजारों लोग अपना नसीब आजमाने अपने सपने सवारने आते रहते हैं। जहाँ कई लोग अपने सपनों को पूरा कर लेते है तो कई लोग उन्हीं सपनों भरी धुंधली आँखों से वापस लौट जाते हैं। मैने सुना था की मोहन राकेश जैसे नाट्यकार भी किसी जमाने मे मुंबई आए थे अपना नसीब आजमाने। लेकिन एक दिन के बाद ही वो दिल्ही लौट गए और अपने मित्र कमलेश्वरजी से कहा, बम्बई में पसीनेवाली गर्मी बहोत है, मुझे अच्छा नहीं लगा।

मोहन राकेश के मुंबई छोड़ने का कारण ह्युमिडिटी है और मेरे मुंबई छोडने का कारण ह्युमैनिटि (मानवता) है। मेरे नजरिए से मुंबई में नमी बहोत ज्यादा है और मानवता बहोत कम है।

अभी यहाँ तीन-तीन महानगरों (अमदावाद, दिल्ली, मुंबई) के अनुभवरूपी सूप से (गेहूँ साफ करने का साधन) साफ किया हुआ, साफ सुथरा नाट्य कर्मी बनकर खडा है। जिसके पास संस्मरणो का खजाना भी है और उसे अभिव्यक्त करने का साधन रंगमंच, भी। मैं आज भी छारानगर के किसी भी गली या नुक्कड से गुज़रता हूँ तो मुझे मेरे ही कदमों की आहट सुनाई देती है। मैं आज भी किसी पूँजीपती को गरीब से ब्याज वसूलते देखता हूँ तो वो गालीयाँ फिर से मेरे कानों तक पहोचती है जो मेरे पिताजी को कर्जदारों से सुननी पडती थीं। और मैं अपने अतीत से सुकून पाने के लिए छारानगर में मिट्टी के खिलौनो के साथ खेल रहे बच्चों के साथ खेलने भाग जाता हूँ। थोडी देर के लिए ये मान लेता हूँ की मैं सचमुच बच्चा हूँ मुझे क्या लेना देना पूँजीवाद या समाजवाद से। लेकिन वो बच्चे का अभिनय खत्म होते ही वापस राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय का स्नातक, आलोक गागडेकर, उम्र तीस साल, बन

जाता हूँ। और फिर से एतिहासिक किरदारों को छारानगर में आमंत्रित करता हूँ और उनके बारे में नई नई कल्पनाओ को जोडता रहेता हूँ। मैं छारानगर से गुजरते हुए गांधीजी को नाक पोंछते देखता हूँ तो कभी पंचायत में जिन्नाह और नेहरू को लडते हुए पाता हूँ। कभी किसी कृष्ण को अर्जुन के माथे पर केसरी फेटा बाँधते हुए देखता हूँ तो कभी द्रौपदी और सीता को आत्महत्या करते देखता हूँ। कभी कौरव और पांडव के युद्ध में पिसे हुए अश्वत्थामा को अपनी किताबें जलाते हुए भी देखता हूँ। और ये सब देखने के बाद मैं खुद किताबों की दुनिया में चला जाता हूँ जहाँ सिमोन, सात्र, गोर्की, पुश्कीन तसल्ली देते हैं की एक दिन सब ठीक हो जाएगा।

v v v

कभी खुशी, कभी गम

जीतेन्द्र इन्द्रेकर

मेरी माँ कहती है कि मैं बचपन से ही बहोत ही मजाकीया और शैतान किस्म का लड़का रहा हूँ। मैं बचपन में बहोत लड़ाइयाँ किया करता था, पड़ौसी मेरे से परेशान रहते थे। सारा बचपन मज़ाक और खेल मे निकल गया । अब जब भी मैं अपने आपको आइने में देखता हूँ तो अपने आप से बात करने का मन करता है। मैं अक्सर अपने आप से बात करता हूँ कि, किस तरह मेरे जीवन में परिवर्तन आए। तब मुझे अपने शुरूआत के दिन याद आने लगते हैं, मेरा 'बूधन थियेटर' के साथ का सफर याद आने लगता है। आज मैं ये सब अपने ही प्रतिबिंब को बता रहा हूँ, उसे बताना चाहता हूँ कि तुम क्या हो, कैसे हो, और क्युं हो ।

मुझे पहले से नाटक करने का शौक था पर मुझे कोई नाटक सिखानेवाला नहीं था, अभिनय के लिए कोई प्लेटफॉर्म भी नहीं था । ३१ अगस्त १९९८ को हमारे यहाँ 'विमुक्ती दिवस' का कार्यक्रम होनेवाला था। तब छारानगर रोड पर एक छोटी सी लायब्रेरी थी। मेरे दोस्तों ने कहा की कोई गांधी जैसा आदमी कुर्ता पहनकर आया है । मैंने सोचा, 'चलो, मैं भी उन्हें देखने जाता हूँ ।' मैंने वहाँ नाटक भी देखा और उस आदमी को भी । वो डॉ. गणेश देवी थे । साथ में महाश्वेता देवीजी भी थीं । लायर्बेरी का नाम था 'मानसिंह छारा लायर्बेरी'। हम रोज़ इसे दूर से देखते थे। कुछ समय बीता और मेरे मामा गौतम गुमाने वहाँ लायर्बेरियन बने । एक दिन उन्होंने मुझे बताया, 'मैंने तुम्हारा लायब्रेरी का फॉर्म भर दिया है। नाटक का ऑडिशन भी चल रहा है। दक्षिणभाई बजरंगे ऑडिशन लेनेवाले हैं'। अगले दिन मैं खूब तैयारी कर के लायब्रेरी में पहोंचा। मेरा सिलेक्शन हुआ और हम 'दर्पण अकादमी' गए ।

उस समय मेरे घर में कोई रोक टोक नहीं थी। तब मेरी उम्र बारह साल थी ।

'दर्पण अकादमी' में हमें रोज वर्कशॉप के लिए ले जाया जाता था। वहाँ कैलाश पंड्या (दादा) और अर्चन त्रिवेदी हमें नाटक के बारे में बताते थे। हम बीस-पच्चीस बच्चे थे। अर्चन भाई ने गांधीजी के 'सत्य ना प्रयोगों' पर पाँच नाटक बनाए और इसे 'हेरीटेज प्रोजेक्ट' का नाम दिया। ये पाँच नाटक थे, 'सत्यवादी चोर', 'स्त्री शक्ति', 'राक्षस', 'एक ही मिट्टी' और 'सर्व धर्म समान'।

ये मेरे जीवन के पहले नाटक थे। हमने इनके कई शो किए। इसके बाद हम हर रोज़ लायब्रेरी में जाकर पढ़ने लगे । दक्षिण जब भी नुक्कड़ नाटक बनाता तो हमें उस में छोटे-मोटे किरदार मिलते । तब से मेरे जीवन में परिवर्तन आने लगा। मेरी नाटक में रुचि बढ़ रही थी। एक दिन 'बूधन' नाटक में मुझे हवलदार का किरदार मिला। हम शो करने के लिए महाशिवरात्री के दिन कलेश्वरी गए। वहाँ बहोत लोग इकट्ठे हुए थे । वो मेरा पहला नुक्कड़ नाटक का परफॉर्मेन्स था। आलोक भैया बूधन सबर का रोल कर रहे थे। करंटवाले सीन में हम में से कोई संवाद भूल गया जिससे हमें ये सीन दो बार करना पड़ा। प्रयोग किया और जैसे-तैसे नाटक पूर्ण किया । इस तरह नाटक में इम्प्रोवाइजेशन कैसे करते है ये सीखा । मुझे इस तरह छोटे-छोटे किरदार मिलते रहे और हम थियेटर की मूवमेंट को समझते गए । मैंने 'बूधन' में एक 'हवलदार' के किरदार से शुरूआत की थी और अब मैं 'बूधन' का किरदार करता हूँ ।

'बूधन नाटक' के बाद हमने दूसरे कई नाटक बनाए जैसे, 'दीपक पवार', 'पिन्याहारी काले की मौत', 'मज़हब हमें सिखाता आपस में बैर रखना', 'भोमा', 'हैमलेट इन छारानगर', 'एक छोटी सी लड़ाई', 'मुझे मत मारो साब', 'चोली के पीछे क्या है?', 'एक ओर बाल्कनी' इत्यादि ।ये सभी नाटक सत्य घटना पर आधारित हैं। जैसे, 'बूधन नाटक का किरदार बूधन, साबर जमात का था । हमारी आदिवासी जाति के इस आदमी को पुलीस ने बेरहमी से मारकर उसकी मृत्यु को आत्महत्या का करार दिया। महाश्वेता देवीजी ने केस किया ओर अंत मे बूधन की पत्नी, श्यामली को न्याय मिला।

महाराष्ट्र में सोलापुर में रहनेवाले दीपक पवार को पुलीस ने मारा। ऐसी बहोत सी घटनाएँ हैं जिन पर हम नाटक तैयार करते और इन नाटकों को नुक्कड़ पर परफॉर्म करते। कई बार इन्हें परफॉर्म करने बाहर भी जाते। इन सभी घटनाओं और नाटकों द्वारा मैं अपनी जाति के इतिहास को समझने लगा। २००२ के कौमी दंगों के बाद दक्षिण ने कौमवाद पर 'मज़हब हमें सिखाता आपस में बैर रखना', नाम से एक नाटक बनाया। फिर हमने बादल सरकार लिखित 'भोमा' नाटक पर नुक्कड़ नाटक बनाया। इसका पहला शो धीरूभाई इंस्टीट्यूट ऑफ इन्फॉरमेशन एन्ड कम्युनिकेशन टेक्नोलोजी, गांधीनगर में रखा गया। इसके बाद हम ने इस नाटक के बहोत से शो किए।

हमने आदिवासियों की समस्याओं को लेकर भी एक नाटक बनाया जिसका नाम था 'एक छोटी सी लड़ाई'। इस नाटक में आदिवासियों को शोषण का सामना कैसे करना चाहिए, इसके बारे में धुमील, पाश, बशीर भद्र, गुलज़ार जैसे कई महान कवियों की कविताएँ लेकर, एक काव्यमय नाटक बनाया था। फिर हमने 'मुझे मत मारो साब' नाटक बनाया जिसमें हम ने अब तक के सभी नाटकों में से थोड़े-थोड़े अंश लेकर एक कोलॉज़ की तरह तैयार किया। इस तरह हम नुक्कड़ नाटक के करीब आते गए और अपना इतिहास जानने लगे।

इससे पहले मैं ये नहीं जानता था कि हम कौन हैं, कहाँ से आए हैं, छारानगर कैसे बसा। पर नाटक से जुड़ने के बाद मैं बहोत कुछ जानने लगा। मुझे अपनी छारा जाति का इतिहास जानने को मिला। मुझे पता चला कि हमारी जाति कितनी पिछड़ी हुई है, लोग हमें क्या समझते हैं, हमें शक की निगाह से क्युं देखते हैं, क्युं हमारी जाति के लोगों को अक्सर पुलीस पकड़ के ले जाया करती है, हम बेगुनाहों को भी क्युं मारती है, क्युं हमें जन्मजात गुनहगार कहती है, हमारे पूर्वज कौन थे, हमारी कितनी जातियाँ हैं, वो कहाँ-कहाँ पर बसी हुई हैं।

हमारी कुल एक सौ इक्यानवे आदिवासी जनजातियाँ पूरे भारत में बसी हैं। चामठा, डफेर, कंजर, सांसी, भांतु, गाडीया लोहार, मदारी, छारा, इस

तरह की अनेक जातियाँ पूरे भारत में और भारत के बाहर भी बसी हैं । इन जातियों को हमारी भारत सरकार डिनोटीफाइड़ एन्ड नॉमैडिक ट्राइब्स (डी.एन.टी.-एन.टी.) के नाम से जानती है, यानी घुमन्तु और विमुक्त जनजातियाँ । इन सारी जातियों के लोग अलग-अलग जगह बसे हुए हैं । छारानगर में करीब दस से पन्द्रह हजार लोगों की बस्ती है । छारा लोगों का भारत में ये सबसे बड़ा समूह है । अंग्रेजों के समय छारानगर एक सेटलमेंट हुआ करता था। ३१ अगस्त १९५२ के दिन पंडित जवाहरलाल नेहरू ने हमें विशेष मुक्त का दर्जा देकर आज़ाद किया । यानी हमें देश के आज़ाद होने के पाँच साल बाद आजादी मिली । फिर भी हम पर इतिहास और समाज द्वारा लगाए गए 'जन्मजात गुनहगार' का धब्बा नहीं मिटा। पुलीस का व्यवहार आँखों के सामने था । पुलीस हमें बीच रास्ते रोक लेती, जैसे हम चोर हों। एक बार मैं नाटक का रिहर्सल कर के घर आकर सोया ही था। अचानक पुलिस रात के तीन बजे मेरे घर जबरदस्ती अंदर घुस आयी और मेरे पापा को बिना किसी कसूर, मारते-मारते पुलीसथाने ले गयी । पापा को जबरदस्ती चोरी कबूल करने को कहा गया। जब मैं दूसरे दिन पिताजी को खाना देने पुलीसथाने गया तो देखा कि वो मेरे पिताजी के हाथ बाँधकर उन्हें मार रहे थे। मेरे बेकसूर पिताजी मार खा रहे थे और मैं एक नपुंसक की तरह ये देखता रहा । मैं कुछ नहीं कर पाया। तब मेरी उम्र करीबन पंद्रह साल की थी । जब भी मैं सत्य घटनाओं पर आधारित 'बूधन' जैसे नाटक करता हूँ तब अपना किरदार करते वक्त मुझे वो पल याद आ जाते हैं और न जाने कैसे मुझ में एक अजीब सी शक्ति आ जाती है जिससे मैं अपने किरदार को बहोत अच्छी तरह निभा पाता हूँ ।

देखते-देखते जीवन का एक पड़ाव पार हो गया और मैं स्कूल से कॉलेज में आ गया। मैंने बारहवीं की परीक्षा पास की और 'एच.के. आटर्स कॉलेज' में दाखिला लिया। यहाँ मेरा मुख्य विषय था 'भारतीय संस्कृति'। 'एच.के. आटर्स कॉलेज' में मुझे दाखिला 'बूधन थियेटर' के नाम से ही मिला। आलोक भैया वहाँ पहले से ही पढ़ रहे थे। कॉलेज में प्रौफेसर सौम्य जोशी मिले जो

एक अच्छे कवि होने के साथ-साथ अच्छे दिग्दर्शक भी हैं। मैंने कॉलेज में पढ़ाई शुरू की और उनके नाट्य शिविर में भाग लिया। सौम्य सर ने शिबिर में मेरा अभिनय देखकर मुझे अपने नए नाटक 'आठमा तारानुं आकाश' में कास्ट किया। ये नाटक अभीजात जोशी का लिखा हुआ है। वो बहोत ही अच्छे लेखक हैं। इस तरह मुझे कॉलेज के पहले साल में ही फुल-लेंथ नाटक करने का मौका मिला। सौम्य सर के साथ रहकर मैं नाटक की गंभीरता समझा, और उनके ग्रूप 'फेड इन थियेटर' में जुड़ गया। उस दौरान मेरे घर की परिस्थिति बहोत खराब थी। मेरे पिताजी किसी वजह से जेल में थे। हमारे घर के हालात बिगड़ गए। पिताजी को छुड़ाने के लिए हमने हमारा सारा पैसा लगा दिया। उसी वक्त मेरी कॉलेज की फीस भी भरनी थी पर मैं ऐसी स्थिति में नहीं था कि फीस भर सकूँ। तब सौम्य सर ने मेरी फीस भर दी। वो हमारी खूब मदद करते थे। देखते ही देखते इम्तहान आ गए ओर मैं पास हो गया। मैं कॉलेज के दूसरे साल में आ गया। पिताजी को छुड़वाने की कोशिश अब भी जारी थी। मेरी तीनों बहने रोया करती थीं। किसी तरह पिताजी छुट गए। घर में खुशी की लहर दौड़ आयी। अब धीरे धीरे सब ठीक हो रहा था।

२००४ में हमने 'आठवाँ तारानुं आकाश' का शो 'राष्ट्रिय नाट्य विद्यालय' के 'भारत रंग महोत्सव' में किया। हमने इस नाटक के करीबन अड़तालीस शो किए। उसके बाद मैंने 'इंडियन नेशनल थियेटर'(आय.एन.टी.) में 'जवादो ने यार, बद्धु सरखुज छे' (जाने दो यार, सबकुछ एक जैसा ही है) किया। उसके बाद हमने मुंबई के 'पृथ्वी थियेटर फेस्टिवल' में 'आठवाँ तारानुं आकाश' का शो किया। इस नाटक के दौरान और 'एच.के.कॉलेज' में एडमिशन के बाद मुझे बहोत कुछ सीखने को मिला। सौम्य सर के साथ रहकर प्रोसेनियम थियेटर सीखने को मिला। हमने कॉलेज में खूब मौज- मस्ती की, साथ-साथ नाटक भी किए। कॉलेज के दरमियान मेरे बहोत से दोस्त बने। यहाँ से मेरी एक अलग पहचान बनने लगी। उस दौरान मैं राजु बारोट (दादा) जैसे लोगों से मिला। इन सब से पहचान कराने

में विवेक ने मेरी सबसे ज़्यादा मदद की ।

कॉलेज के दूसरे साल की परीक्षा पूरी हुई । दूसरे साल में मैं प्रथम श्रेणी में पास हुआ । कॉलेज के तीसरे साल में आय.एन.टी. कॉम्पीटीशन के लिए हमारे कॉलेज ने नाटक तैयार किया। वो मेरी ज़िन्दगी का सबसे मुश्किल वक्त था फिर भी मैं रिहर्सल करता रहा । मेरे पिताजी को फिर से पुलीस ने जेल में डाल दिया गया। वो करीबन तीन महीने जेल में रहे । घर में तकलीफें शुरू हो गई थीं। इधर कॉलेज में आय.एन.टी. नाटक के रिहर्सल हो रहे थे । हमने प्रतियोगिता के लिए ‘नजर-नजरनी वात’ (अपना अपना नजरिया) नाम का नाटक तैयार किया जिसके लेखक थे प्रेम गढवी और मेहुल मकवाणा। इस नाटक का दिग्दर्शन किया था प्रेम गढवी ने। इस नाटक में मेरा किरदार एक अन्धे लड़के का था जो मेरे पसंदीदा किरदारों में से एक है। ये नाटक समाज को सीख देता हुआ नाटक था। इसमें मेरा मुख्य किरदार था । इधर मेरे पिताजी पर पुलीसवालों ने किसी दूसरे के गुनाह में पकड़ कर केस कर दिया था । छारा होने के कारण उनकी जमानत भी नहीं हो पा रही थी। यहाँ हमारा नाटक का सेमी- फाईनल परफॉर्मेंस हुआ और हमारा नाटक फाईनल में पहोंच गया। फाईनल की तैयारियाँ हो रही थीं और इधर घर की परिस्थिती और भी बिगड़ गयी । मेरी भाभी गर्भवती थी । वो अस्पताल में दाखिल थी। दूसरी ओर मेरी दादी अपनी अंतिम साँसे ले रही थी। दादी बार-बार मेरे पिताजी का नाम पुकार रही थी पर वो जेल में थे । उधर आय.एन.टी. का फाईनल शो था । उस वक्त भगवान भी बहोत निर्दय हो गया था। मेरी दादी का देहांत हो गया, वहाँ भाभी ने एक साथ दो बच्चियों को जन्म दिया। मेरा भाई, राजेन्द्र और मेरी माँ अस्पताल में भाभी के साथ थे । पूरा परिवार शोकमय हो गया ।

मेरी दादी अपने एकमात्र बेटे हरीश के लिए तड़पते हुए हमें अलविदा कर गई । मैं उसकी बूढ़ी आँखों में अपने बेटे के आने की आशा देख रहा था पर उनकी इच्छा अधूरी रह गई । उनकी आशा देख मुझ में अजीब सी शक्ति आ गई । मैं रोया नहीं। उधर मेरे पिताजी अपनी माँ को देखने के लिए तड़प रहे थे । वो काली कोठरी के अंधेरे में एक ऐसी किरण ढूँढ़ रहे थे जिस में

अपनी माँ का चहेरा दिखाई दे। जिस माँ ने उसे पैदा किया, पाला पोसा, उसे दूध पिलाया, उसका कर्ज चुकाना अभी बाकी था। उसका अंतिम संस्कार करके वो अपना बेटे होने का फ़र्ज़ और धर्म अदा करना चाहते थे। पर वक्त की दीवार और मजबूरी की जंजीरों ने उन्हें जकड़ रखा था।

मुश्किलें मानो बारिश की तरह बरस रही थीं। दूसरे दिन मेरा नाटक था। मेरे कंधों पर बोझ बढ़ता जा रहा था। एक तरफ भाभी अस्पताल में, दूसरी तरफ पिताजी जेल में और यहाँ दादी का शव। मैंने इतनी तकलीफें एक साथ पहली बार झेली थीं। मैं रोना चाहता था पर अगर मैं टूट जाता तो परिवार कैसे मजबूत रहता ? मुझे दादी की बूढ़ी आँखें बार-बार याद आ रही थीं। मेरी माँ से कुछ पैसे लेकर मैं अपने पिताजी की जमानत करवाने हाईकोर्ट गया। मैंने निश्चय किया कि मैं पिताजी के हाथों से ही दादी का अंतिम संस्कार करवाऊँगा। मैं वकील, आदिल मेहता के पास पहोंचा। मैंने उन्हें पूरी बात बताई और पैसे दिए। मैंने उन्हें जल्दी से कार्यवाही करने को कहा। कोर्ट में हर कदम पर पैसा खर्च करना पड़ रहा था। आखिर शाम के चार बजे पिताजी को समय मर्यादित जमानत मिली। रतनभाई कोडेकर ने मेरी बहोत मदद की। जमानत के कागज़ हाथ में आते ही मेरी आँखों में खुशी की लहर सी उत्पन्न हुई, पर काम अभी अधूरा था। किसी तरह मैं शाम सात बजे जेल पहोंचा। वहाँ पर भी हर जगह पैसे की ही बोली चल रही थी। कोई भी मेरी मन:स्थिति को नहीं समझ पा रहा था। उस वक्त का हर पल मुझे कुछ सीख दे रहा था। मैं तुरन्त लॉकप गया जहाँ पिताजी बंद थे। मैंने उन्हें देखा तो बस देखता ही रह गया। उनकी आँखों में मानो पूरा समन्दर भरा हो। अपनी माँ को देखने की आशा उनकी आँखों में साफ छलक रही थी। सिर्फ उनकी माँ का चेहरा ही उस समन्दर में तूफान ला सकता था। उनकी आँखें देख मैं चुप रह गया। उन्हें कह ही नहीं पाया की दादी अब इस दुनिया में नहीं रही। उनकी वो बेबस आँखें मुझे आज भी याद हैं। हम तुरन्त वहाँ से निकले और रास्ता देखते रहे की कब हम घर पहोंचें। घर पहोंचते ही पिताजी दादी के पास बैठे, उनका चेहरा देखते रहे। उनकी आँखों में आँसू आ गए। पिताजी बहोत रोए।

मेरी तीनों बहनें, माँ, भाई, मेरा सारा परिवार वहाँ मौजूद था। चारों तरफ मातम छाया हुआ था। दादी को रात ग्यारह बजे हम स्मशान गृह ले गए और पिताजी ने अपने हाथों से उनका अंतिम संस्कार किया। हम रात दो बजे घर लौटे। पिताजी को पंद्रह दिन की ही जमानत मिली थी। फिर उन्हें वापस जेल जाना था। दूसरे दिन रिवाज के अनुसार पिंडी करनी थी। मैं दादी की पिंडी की विधि के लिए नहीं रुक सका। सुबह जल्दी नाटक की रिहर्सल में चला गया क्युंकि उस रात दस बजे 'आय.एन.टी.' का फाइनल था। मेर ग्रूपवाले भी मेरी स्थिति समझ रहे थे। 'फेड इन ग्रूप' के सभी दोस्तों ने मुझे बहोत हिम्मत दी। नाटक शुरू होने से पहले मैं बहोत अजीब सा महसूस कर रहा था। ऐसी कठिन परिस्थिति में नाटक किस तरह से करना मैंने दक्षिण और सौम्य सर से सीखा, 'ध शो मस्ट गो ऑन' हमारा नाटक बहोत अच्छा रहा। अब परिणाम की बारी थी। हमारे नाटक को प्रथम पुरस्कार मिला। लेखक और दिग्दर्शन की श्रेणी में भी हमारे नाटक को प्रथम स्थान मिला और मुझे गुजरात में प्रथम अभिनेता का पुरस्कार मिला। वो मेरी ज़िंदगी का सबसे अच्छा पल था। मुझे स्मृति इरानी के हाथों प्रथम पुरस्कार मिला। स्मृतिजी ने मेरे पात्र चन्द्रकांत के बारे में कहा, 'आज चन्द्रकांत ने हमारी आँखें खोल दीं।' सबसे ज़्यादा पुरस्कार 'एच.के. कॉलेज' को मिले थे। उस वक्त मुझे एहसास हुआ कि तकलीफें और मुश्किलों से जो लड़ता है आखिर में जीत उसी की होती है। सारे कॉलेज में मेरी चर्चा होने लगी। मेरी फोटो और नाम अखबार में भी आए। मुझे बहोत अच्छा लगा, मेरे साथी और घरवाले भी बहोत खुश हुए। पिताजी भी खुश दिखाई दिए। पर वो खुशी ज़्यादा दिन नहीं रही क्युंकि उन्हें कुछ दिनों बाद वापस जेल जाना था। पापा फिर जेल गए और हमने उन्हें कुछ दिनों बाद वापस जमानत पर छुड़वाया। ज़िंदगी एक रेल की तरह आगे बढ़ने लगी। कुछ दिन सब अच्छा रहा।

२००६ में मैंने एन.एस.डी. में एडमिशन के लिए फॉर्म भरा। बूधन ग्रूप से आलोक गागडेकर और विवेक घंमडे एन.एस.डी. में पढ़ रहे थे। उनके

तथा सौम्य सर, राजू बारोट और दक्षिण के मार्गदर्शन से मैंने और तुषार ने जो मेरा अच्छा दोस्त है, तैयारी की। पहले इम्तहान के लिए हम मुम्बई गए जहाँ हमारा इम्तहान 'नेहरू सेन्टर' में लिया गया । एन.एस.डी. के डीन, डी.आर. अंकुरजी, और अन्य शिक्षकों ने इम्तहान लिया । हम इम्तहान देकर 'हाजी अली' चले गए क्युंकि परिणाम शाम को घोषित होने वाला था। हाजी अली बाबा के दर्शन किए और वापस 'नेहरू सेन्टर' गए । परिणाम आ चुका था। मैं और तुषार दोनों पास हो गए थे । दस दिन बाद आखरी इम्तहान दिल्ही में था । एन.एस.डी. में पाँच दिन का इम्तहान था । वहाँ हमें बहोत कुछ सिखाया गया, हमारा परीक्षण हुआ । मैं और तुषार दोनों एक ही ग्रूप में थे । इम्तहान पूरा हुआ और पन्द्रह दिन बाद परिणाम आया । तुषार और मैं दोनों फेल हो गए थे । मैं बहोत उदास हो गया । दु:ख बहोत हुआ पर आत्मविश्वास नहीं खोया । हम थियेटर करते रहे और साथ में पढ़ाई भी। मैंने अच्छे नंबरो से कॉलेज पास किया। इसके बाद मैं दक्षिण के साथ बच्चों के वर्कशॉप लेने लगा। कॉलेज के बच्चों के भी मैंने वर्कशॉप लिए ।

कॉलेज पास करने के बाद मैंने 'भवन्स कॉलेज' में पत्रकारिता का अभ्यास करने के लिए दाखिला लिया । मुझे पत्रकारिता पढ़ने की प्रेरणा मेरे बड़े भाई समान, रोक्सी गागडेकर से मिली । वो खुद एक अच्छा पत्रकार है । इसके साथ मैं थोड़ा बहोत कायदा-कानून भी जानना चाहता था । इसलिए मैंने 'सर एल.ए. शाह लॉ कॉलेज' में वकालत के प्रथम वर्ष में दाखिला लिया । मैं दोनों कॉलेज की पढ़ाई साथ ही करता रहा। मैंने 'भवन्स कॉलेज' में एक रेडियो नाटक भी किया जो महात्मा गांधी पर बनाया गया था । मैंने उस नाटक में गांधीजी का पात्र निभाया था । उस नाटक से मैंने कॉलेज में अपनी एक अलग पहचान बनायी । दोनों कॉलेज की पढ़ाई से खर्चा भी बढ़ गया। फिर मुझे 'एल. एन्ड सी. मेहता कॉलेज' में 'युथ फेस्टीवल' में स्किट और माइम का दिग्दर्शन करने का मौका मिला। ये वो कॉलेज था जहाँ मेरे गुरु दक्षिण बजरंगे सर पढ़ा करते थे और अपने समय में नाटक भी किया करते थे। दक्षिण सर के कॉलेज पास करने के बाद वहाँ थियेटर बंद हो गया था । वहाँ मुझे

चौदह साल बाद पुनः नाटक शुरू करने का मौका मिला। उस कॉलेज में मैंने नाटक शुरू करवाया और युथ-फेस्टीवल में 'हल्ला बोल' पर स्किट और अस्पृश्यता पर माइम करवाया। अस्पृश्यता की माइम को प्रथम पुरस्कार मिला। फिर 'एल.एन्ड सी. कॉलेज' में मैंने 'हल्ला बोल', '१८५७ महाविप्लव', 'गांधी', 'बेटी' नाम के स्किट बनवाए और 'मुझे मत मारो साब' ऐकांकी करवायी जिस में हमें सर्वश्रेष्ठ हिन्दी नाटक का पुरस्कार भी मिला। इस तरह मैंने 'एल.एन्ड सी. मेहता' कॉलेज में एक छोटा सा थियेटर ग्रूप बनाया। बहोत सालों बाद कॉलेज को कोई इनाम मिला था। इस कार्य में मेरी सबसे ज्यादा मदद उसी कॉलेज की प्रोफेसर, हुमा निझामीजी ने की। वो बहोत ही सहायक प्रौफेसर हैं। वहाँ छोटा सा थियेटर ग्रूप आज भी चल रहा है। कॉलेज में युथ फेस्टीवल करवाने के लिए मुझे कुछ पैसे भी मिले। इससे मैं अपनी पढ़ाई का खर्चा खुद उठा सका। इसी तरह ज़िंदगी डगमगाते हुए आगे बढ़ती रही। कभी-कभी तो इम्तहान छोड़कर भी मैं नाटक के शॉ करने जाया करता और कॉलेज में री-टेस्ट ले लिया करता था। इस तरह मुझे करीबन तीन बार नाटक के शो के लिए री-टेस्ट लेने पड़े। पर इम्तिहान में मैं कभी फेल नहीं हुआ। फरवरी २००७ मे मेरी दोनों बहनों की शादी हुई। नम्रता कि शादी मेरे दोस्त सचीन और धर्मिष्ठा की शादी धर्मेन्द्र के साथ हुई।

एक बार 'बूधन थियेटर' में नया नाटक बनाने का तय किया गया। ये नाटक आलोक गागडेकर बनाने वाला था। वो कुछ दिनों के लिए अहमदाबाद आया। वो अब एन.एस.डी. पास कर के मुंबई में रहने लगा था। वो हमें होटल में चाय पर अपने नए नाटक के बारे में समझाने लगा। उसने बताया की हम महाश्वेता देवीजी की लिखी हुई 'ध ब्रेस्ट गिवर' पर नाटक बना रहे हैं जिस में जीतू और संदीप को स्त्री का रोल करना है। उसने दो-तीन दृश्य भी समझाए। मुझे ये विचार बहोत अच्छा लगा। सच कहूँ तो इस तरह का किरदार करने की मेरी भी इच्छा थी जो अब पूरी होने जा रही थी। मैंने आलोक से कहा कि मैं अपने रोल को पूरा न्याय देने की कोशिश करूँगा। फिर रिहर्सल शुरू हुए। मैं छारानगर की स्त्रियों को ध्यान से देखने लगा। आलोक ने बहोत

मेहनत की और आखिर हमारा ये नाटक तैयार हो गया। हमने इसको नाम दिया 'चोली के पीछे क्या है?' हमने इस नाटक के जगह- जगह शो किए जैसे पूना, हैदराबाद, चैन्नई, राजकोट, और अहमदाबाद। इस बीच शाश्वती तालुकदार और केरीम फ्रीडमेन ताईवान से छारानगर आए। ये उनकी छारानगर में दूसरी मुलाकात थी। वो दोनों छारानगर और 'बूधन थियेटर' पर फिल्म बना रहे थे। उन्होंने भी हमारे नाटक 'चोली के पीछे क्या है ?' का शो देखा और इसकी शूटिंग की। फिर वो अपने वतन लौट गए। उनके साथ काम कर के मुझे बहोत अच्छा लगा। इस बीच मैंने 'भवन्स कॉलेज' में पत्रकारिता का कोर्स पास कर लिया। साथ ही वकालत का पहला वर्ष भी पूरा किया। 'चोली के पीछे क्या है ?' के शो भी चलते रहे। मुझे इसका वो शो आज भी याद है जो होली के त्यौहार के बाद 'दर्पण अकादमी' में हुआ था। १० मार्च २००७ को हमारा शो था और ३ मार्च २००७ के रोज़ होली के दिन हमारे परिवार पर ऐसी आपत्ति आई जो हमने कभी ही नहीं सोची थी। वक्त ने मेरी ज़िंदगी को फिर मोड़ दिया और हमारा पूरा परिवार तकलीफों के कांटों में फँस गया। हमारा सारा परिवार होली खेल रहा था। रंगों भरी दुनिया के हर रंग जैसे हमारे घर छा गए थे। हर एक के चेहरे पर अनेक रंग दिखाई दे रहे थे। खुशियों भरा माहौल था। मेरी तीनों बहने, नम्रता, धर्मिष्ठा और मनीषा भी होली खेल रही थीं। मेरे पिताजी भी साथ थे। सभी के चेहरे गुलाब की तरह खिलखिला रहे थे। मेरी मौसी, माँ, मामा सब मेरे घर आए थे। सारे घर में रंग उड़ रहे थे जैसे इन्द्रधनुष के सात रंग हवा में घुल-मिल गए हों। पिताजी अपनी साली पर रंग और पानी डाल रहे थे। हमारे रिवाज में जीजा और साली आपस में होली खेलते हैं। वो भी अपने संबंधों को रंगमय बना रहे थे। इतने में मेरी मौसी फिसल गई और उसके पेट में चोट लगी। हम उसे अस्पताल ले गए। हम सब बहोत घबरा गए थे। होली का माहौल मानो मातम सा बन गया। मौसी का अस्पताल में इलाज हुआ। फिर उन्हें घर लेकर आए। मानो काले बादलों के सामने इन्द्रधनुष के सातों रंग फ़ीके पड़ गए हों और हमारे घर पर काले बादल छाने लगे थे। इसके तीन दिन बाद मौसी अपने घर चली

गयी। अचानक उनके पेट में दर्द उठा और उन्हें फिर अस्पताल ले गए। तब पता चला कि खुद का बच्चा संभालने के अभाव के कारण वो मर गया है। मेरी मौसी ने मेरे पिताजी और बड़े भाई पर पुलीस केस करवा दिया। उन पर कलम ३१६ और ११४ लगा दी गई। पुलीस ने मेरे पिताजी और भाई को जेल में डाल दिया। सात मार्च को दोनों को जेल हुई और दस मार्च को मेरा 'दर्पण अकादमी' में 'चोली के पीछे क्या है ?' का शो था। तकलीफों ने फिर मुझे फिर घेर लिया। नाटक और घर की परिस्थिति के बीच फिर से संघर्ष शुरू हो गया। मैं एक बेटा और भाई होने का धर्म अदा करना चाहता था और साथ ही एक कलाकार के नाते और 'बूधन थियेटर' के साथ मेरी प्रतिबद्धता भी निभाना चाहता था। घरवालों ने हमसे तीन लाख रुपए की माँग की और कहा कि अगर हमने रुपए दिए तो ही वो केस (एफ.आई.आर.) वापस खीच लेंगे वरना नहीं। हमारे पास इतने पैसे तो थे नहीं। हमने कोर्ट की मदद से भैया और पिताजी को छुड़वाने का फैसला लिया। पंचायत के पाँव पकड़े पर हमारी पंचायत ने कोई मदद नहीं की। उस वक्त मुझे महसूस हुआ कि रिश्ते हमेशा पैसों से बड़े नहीं होते। कुछ रिश्ते पैसों के लिए ही होते हैं, जैसे मेरी मौसी का रिश्ता हमसे था। मेरा रिश्तों पर से विश्वास उठ गया। मेरी माँ और बहनों के एक-एक आँसू रिश्तों की दुहाई दे रहे थे। मेरे भाई की तीनों बेटियाँ, झरना, राजल और रुतुल अपने पिता से मिलने के लिए बिलख रही थीं। मेरी भाभी सेजल शाँत रहकर भी अपने आँसुओं से बहोत कुछ कह जाती थी। पर उनके दिल से निकली हाय मौसी के किसी घरवाले तक नहीं पहोंची। आँखों से संबंधों का पर्दा उठ गया था। कोर्ट के रास्ते बाहें पसारे खड़े थे। हर बार की तरह मैंने कोर्ट और पुलीस थानों के धक्के खाने शुरू कर दिए। मैंने पिताजी और भैया से जेल में मुलाकात लेकर उन्हें दिलासा दिया कि, 'हुँ थारकु छुड़वाई लंगडा', चिंता मत करना (मैं आपको छुड़वा लुँगा)।' भाई को जेल में देखकर मुझे बहोत दु:ख हुआ। ऐसा लगा जैसे मेरी सारी दुनिया ही खत्म हो गई हो। भैया बहोत डर गए थे पर पिताजी साथ में थे इसलिए वो मुझसे आँख मिलाकर बात कर रहे थे। मिलने की आशा के

साथ-साथ सलाखों की परछाई भी मुझे साफ नज़र आ रही थी । मैं मुलाकात लेकर वापस लौटा और 'चोली के पीछे क्या है ?' के रिहर्सल में गया । मेरे ग्रूपवाले मेरी परिस्थिति अच्छी तरह जानते थे पर नाटक के पास बट चुके थे, शो करना ज़रूरी था । रिहर्सल का वक्त नहीं था । आलोक भैया मुझ पर बहोत गुस्सा भी हुए। उनका गुस्सा जायज़ था क्युंकि वो नाटक के दिग्दर्शक थे । मुझे बुरा नहीं लगा । रात को नाटक का शो था । मैंने' शो मस्ट गो ऑन' के सूत्र को आगे रखकर, घर के शोक को भूलकर, शो को आगे बढ़ाया। हमने शो अच्छी तरह पूरा किया । सबने मुझे सराहा । मुझे मेरे ग्रूप ने हिम्मत दी । वो मेरी ज़िंदगी का दूसरा यादगार परफॉर्मेंस है ।

दूसरे ही दिन मैं फिर अपने पिताजी और भाई को छुड़वाने में लग गया। घर में सब मायूस हो गए थे। मैंने समाज के दायरे की हर एक कोशिश की, पर मेरी मौसी के साथ किसी भी तरह समाधान नहीं हो सका । भैया और पिताजी तीन महीने तक जेल में रहे। उसी बीच मेरी पत्रकारिता का इम्तिहान भी था। साथ-साथ कोर्ट के धक्के । आखिरकार तीन महीने बाद मौसी के परिवार के साथ एक लाख रुपए में समाधान हुआ । उन्होंने कहा कि अगर हम उन्हें एक लाख दें तो वो अपना बयान बदलने को तैयार हैं। हमने कर्ज से पैसे लाकर उन्हें दिए और कोर्ट में उनका बयान बदलवाया। पिताजी और भैया जेल से छूटे । इस तरह रिश्तेदारों ने पैसों की खातिर अपने रिश्तों को बेच दिया । घर में फिर से खुशी की लहर दौड़ी । मैं छोटी बच्चियों की हँसी देखकर सारे दु:ख भूलने लगा । मेरी माँ, जो अपने बेटे और पति का रास्ता ताक रही थी उसका इंतज़ार खत्म हुआ, ये देखकर मुझे आनंद हुआ। मेरी बहन मनीषा फिर से हँसने-खेलने लगी । मेरी दो बहनें, नम्रता और धर्मिष्ठा की शादी हो चुकी थी । उनकी उदासी भी दूर हुई । घर में सब कुछ पहले जैसा सामान्य माहोल हो गया । इतने में फिर एक आपत्ति आ घिरी। मेरी छोटी बहन धर्मिष्ठा को मायके भेज दिया गया क्युंकि उसके ससुरालवालों ने उसे बहोत दु:ख देना शुरू कर दिया था । वो सब शक्की किस्म के हैं और धर्मिष्ठा को बाहर भी नहीं निकलने देते थे।

उसी दौरान मैंने एक ऐसे व्यक्ति को देखा जो मेरे जीवन का बहोत ही अहम हिस्सा रहा है। उसे पूरे चार सालों बाद देखकर मेरी आँखों में पानी भर आया।

मैं उस लड़की की बात कर रहा हूँ जिससे मैंने प्यार किया था। प्यार ज़िंदगी का सबसे प्यारा और अहम शब्द है जो सारी जिंदगी को अपने में समेट लेता है। उस लड़की के चेहरे ने, उसके अंदाज ने, मेरी नज़र को समेट लिया था। उसके सगाई के दिन ही उसने मुझसे कहा था कि वो मुझसे प्यार करती है। तब उसकी उम्र करीबन पंद्रह साल और मेरी अठारह साल रही होगी। मुझे आज भी याद है जब उसने मुझसे कहा था, 'तेरीया आँखी मकु घणीया मस्त लागतीया ह, मकु तेरीया आँख्खी देईं दे।' (मुझे तुम्हारी आँखें अच्छी लगती हैं, मुझे तुम्हारी आँखें दे दो)। समय बहता गया। करीबन एक साल बाद उसकी शादी हो गई। मैं उसकी शादी में भी गया और बहोत दुःखी होकर वापस लौटा।

समय का पहिया घूमता रहा। मेरा उससे संपर्क टूट गया। वो अपनी दुनिया में खो गई और मैं नाटक की दुनिया में खो गया। अचानक चार सालों बाद जब मैंने उसे अचानक देखा तो मेरी आँखें चकित रह गयीं। उसे देखकर मैं अपने आप को कोसने लगा, रोने लगा। पर वक्त बेरहम था। उसने मुझे मुड़कर कभी नहीं देखा। मुझे पता है कि वो मुझसे बहोत प्यार करती है और हमेशा करती रहेगी। पर जब मैं उसके सामने आया तो उसने मेरी तरफ देखा तक नहीं। मैं जानता हूँ कि वो आज भी मेरा इन्तज़ार कर रही है। पर मैं क्या करूँ ? परिवार की जवाबदारी और समाज के बंधन की वज़ह से शायद मैं उसके लिए कुछ कर नहीं पा रहा हूँ।

उसकी हर अदा, उसका चेहरा, उसकी आँखें, उसकी आवाज़, उसकी मुस्कान, आज तक मैं अपने दिलो-दिमाग में महसूस कर सकता हूँ। अब शायद वो अपनी दुनिया में खुश है और हमेशा खुश रहे, मैं दुआ करता रहूँगा।

जीवन की गाड़ी आगे बढ़ती रही। फिर 'एन.एस.डी' का इम्तिहान आया। इस बार भी मैं और तुषार इम्तिहान देनेवाले थे। मेरा दूसरा प्रयत्न

और तुषार का तीसरा। हम दोनों से विवेक और दक्षिण ने तैयारी करवाई। दक्षिण, सौम्य जोशी और राजू बारोट के मार्गदर्शन से हम इम्तिहान देने गए। मुंबई का इम्तिहान हम दोनों ने पास कर लिया। फिर एन.एस.डी. के वर्कशॉप की तैयारियाँ करने लगे। 'बूधन' ग्रूप के सभी लोग कह रहे थे कि तुषार का तीसरा प्रयत्न है इसलिए उसकी उम्मीद ज्यादा है। मुझे भी तुषार से ज्यादा आशा थी। पर साथ ही आत्मविश्वास था कि इस बार बाजी मारनी है। हम दिल्ली गए। एन.एस.डी. के वर्कशॉप में प्रदर्शन अच्छा रहा। इस बार तुषार दूसरे ग्रूप में था। अलग-अलग जगह के लोग मिले और कुछ अच्छे दोस्त बने। इम्तिहान देकर हम घर लौटे। 'बूधन थियेटर' ग्रूप को हम से बहोत आशाएँ थीं। हम बेसबरी से परिणाम की राह देख रहे थे। पर परिणाम बहोत दु:खद आया। हम दोनों इस बार फिर फेल हो गए। मुझे बहोत दु:ख हुआ पर मैंने अपने आप को संभाल लिया क्युंकि मेरा एक और प्रयत्न अभी बाकी था। आलोक भैया कहते, 'तुम्हारी उम्र अभी छोटी है। तुम चिंता मत करो।' मगर उस दोपहर जब हमारा परिणाम आया तो तुषार की आँखें नम हो गयीं। मुझे वो टूटता हुआ नज़र आया। उसके कंधे झुक गए, वो मौन हो गया। मैं उसकी गीली आँखों में निराशा की झलक देख रहा था। हमने एक-दूसरे को सँभाला। हमने हिम्मत नहीं हारी। नाटक करना जारी रखा। हम दोनों की जोड़ी ने ग्रूप को काफी मजबूत बना दिया था। कुछ ही दिनों में तुषार और अंकुर की नौकरी 'टी.वी नाईन', गुजराती न्यूज़ चैनल में लग गई। ये हमारे ग्रूप के लिए एक अच्छी खबर थी कि हमारे 'बूधन थियेटर' के दो लड़के न्यूज़ चैनल में काम करने लगे थे। तुषार की आँखों की नमी दूर होते देखकर मैं बहोत खुश हुआ। उसकी आँखों में चमक वापस लौट आई थी। तुषार अपने काम से संतुष्ट था। वहाँ मैंने भी अपना इम्तिहान दिया था। मेरा चुनाव न होने पर मैं निराश ज़रूर हुआ था पर मेरी निराशा कुछ ही दिनों में दूर हो गई।

एक दिन फिल्म प्रोडक्शन में काम करने का मौका मिला और जिस तरह हवा पतंग को दूर आसमान में ले जाती है, उसी तरह एक पतंग मुझे भी

थोड़ी ऊँचाई की ओर ले गयी। एक दिन रोक्सी भैया का फोन आया, 'प्रेम बच्चों की फिल्म के लिए ऑडीशन लेने आ रहा है । तुम लायब्रेरी पर शाम चार बजे पहोंच जाना।' मैं जब वहाँ पहोंचा तो बच्चों का ऑडीशन हो रहा था । साथ ही कुछ हमारी उम्र के लड़कों का भी किरदार था । 'पतंग' फिल्म में 'बॉबी' के रोल के लिए ऑडीशन हुआ । अंजली पंजाबी, अजीत पाल और प्रेम ऑडीशन के लिए आए थे । कई दिनों तक ऑडीशन चलता रहा। किसी कारण मुझे फिल्म में रोल तो नहीं मिला पर मुझे बच्चों के साथ काम करने का अनुभव मिला। मुझे बच्चों की कास्टींग के लिए उनके साथ वर्कशॉप करने को कहा गया । फिल्म के सीन समझाकर बच्चों को तैयार करना था। मुझे इस फिल्म में काम मिला । बदले में तनख्वाह देने को भी कहा । मैंने 'हाँ' कर दी और काम शुरू कर दिया । बच्चों के साथ वर्कशॉप में अजीत पाल, अनिल इरफान और नवलीन ने मेरी मदद की। इस तरह 'पतंग' फिल्म के लिए बच्चों को तैयार किया । कई बच्चों के साथ शिबिर करने के बाद बारह बच्चे फिल्म के लिए चुने गए । इन में एक बच्चा छारानगर से था । उसका नाम नितिन कुमार छारा है । हामीद, अजर, हीरेन, भरत, गब्बर, फेजल, सद्दाम, इम्तियाज, संजय, सोनल, नितिन, सलमान सभी बच्चों ने फिल्म में बहोत ही अच्छा काम किया । फिल्म की शूटिंग अहमदाबाद में हुई। तीन महीने शूटिंग चली । मुझे 'पतंग' फिल्म के दौरान बहोत कुछ सीखने को मिला । यह फिल्म, बॉलीवुड की 'द काईट' पर निर्धारीत है। इसके दिग्दर्शक प्रशांत भार्गव और प्रोड्यूसर जयदीप पंजाबी हैं । वो अमरिका के रहने वाले हैं पर उनकी जन्मभूमि भारत है । वो बच्चों के बहोत ही जानकार और मेहनती दिग्दर्शक हैं । प्रशांत बच्चों से बहोत प्यार करते हैं । बच्चों से काम किस तरह लेना वो बहोत अच्छी तरह से जानते हैं । उन्हें पूरी टीम से बहोत लगाव हो गया था । प्रशांत के बारे में जितना कहूँ उतना कम है । उनकी बड़ी-बड़ी आँखों में छोटी-छोटी चीजों को सँभालना, उनकी बातों में प्यार की झलक, और सबको साथ में लेकर काम करना, छोटे-बड़े, अमीर-गरीब में अंतर न रखना, उनकी इन खूबियों से मुझे प्रेरणा मिली। प्रशांत छारानगर में हमारी

लायब्रेरी पर भी आए थे । जयदीप भी बहोत अच्छे हैं । वो भले ही अमरिका में रहते हों पर भारतीय होने की झलक उनके व्यवहार में छलक आती है। मेरा 'पतंग' की टीम के साथ काम करने का अनुभव बहोत ही अच्छा रहा । जिस तरह लोग उतरायन के दिन पतंग उड़ाते हुए उसी में खो जाते हैं, अमीर-गरीब, ऊँच-नीच, मालिक-मजदूर सभी साथ में अपने सारे सुख-दुःख भुलाकर आसमान में उड़ते रंगों में खो जाते हैं और हवा के साथ उनके जीवन का रुख भी बदल जाता है, उसी तरह 'पतंग' फिल्म में काम करने के बाद हवा मेरी पतंग को खुले आसमान में बहोत दूर ले जा रही थी ।

ऐसे कई जानेमाने लोगों के साथ मुझे काम करने का मौका मिला जैसे नवाज सिध्धीकी, सीमा बिस्वास, दर्शन जरीवाला, सुगंधा, आकाश । ऐसे लोगों के साथ काम कर के बहोत अच्छा अनुभव हुआ । नवाज दादा ने तो मुझे एन.एस.डी. के बारे में बहोत कुछ समझाया क्युंकि वो वहाँ से स्नातक हुए थे । इसी तरह 'बूधन थियेटर' के माध्यम से आगे और भी काम करना है । अपने समाज का नाम आगे बढ़ाना है । हम लोगों को बताना चाहते हैं कि हम जन्मजात गुनहगार नहीं बल्कि जन्मजात कलाकार हैं । इस कार्य में भले ही हमारे समाज के लोग हमारा साथ ना दे पाएँ पर हमें ये काम करना है । हमारी आनेवाली पीढ़ी को शिक्षित और समझदार बनाना है । हमारे समाज के लोग हमसे पूछते हैं, 'यो काम करनस थारकु कितने पैसे मिलते हं ?' (तुम्हें ये काम से कितने पैसे मिलते हैं ?) उन्हें क्या पता कि पैसों के बिना कितने ही साल हमने नाटक खेले। उसका आत्मसंतोष कैसे बताएँ? वो तो खुद में ही होता है । हम हमारे समाज का हमारी तरफ ये दृष्टिकोण समझ सकते हैं । नाटक के साथ लायब्रेरी को सँभालना और साथ ही साथ मनीनगर की झोपड़-पट्टी को लेकर भी हमारा ग्रूप अब कार्य कर रहा है । हमने नाटक और छारानगर लायब्रेरी को कभी अलग नहीं समझा। हमारे सारे ग्रूप ने इस सफर में नाटक और लायब्रेरी को एक माना है ।

'बूधन थियेटर' में हम सभी का संपूर्ण हाथ है । हमारे ग्रूप में सब एक दूसरे को समझते हैं । एक दूसरे की तकलीफें भी समझते हैं । हर एक का हाथ

एक दूसरे से मिला हुआ है ।

महाश्वेता देवी जी (अम्मा), गणेश देवी, दक्षिण बजरंगे, रोक्सी गागडेकर, कल्पना, गोल्डन, आलोक, विवेक, तुषार, निखिल, सुशील, उत्तर, संदीप, आतिष, अंकुर, भटुरीया, अनीष, हिमांशु, सिद्धार्थ, भुपेन्द्र, जनक, अज्ञेश, हितेश, हार्दिका, नंदनी, हरीवंश, विजय एवं और भी साथियों के हाथ जब मिलते हैं तो एक मशाल बनती है । और इसकी ज्योति गरीबों का अँधेरा दूर करने के लिए प्रकाश पहोंचाने का काम करती है । जो लोग भूतकाल में हम से जुड़े थे उन सभी ने भी अपना पूरा योगदान दिया है। हमारे ग्रूप में छोटे-बड़े झगड़े भी हुए हैं । कभी रिहर्सल को लेकर, तो कोई आपसी बातों पर। पर कहते हैं की जहाँ झगड़ा होता है, वहाँ प्यार भी होता है । उतना प्यार भी हमारे ग्रूप में सब एक-दूसरे से करते हैं । मुझे पता है कि इस जीवन रूपी संघर्ष में हम साथ हैं । मैं जानता हूँ कि ये सभी इस संघर्ष के साथ-साथ अपने निजी जीवन में भी संघर्ष कर रहे हैं। हम रात-रात भर दक्षिण की छत पर रिहर्सल करते हैं, पर कभी भी हम को उसके घरवालों ने नहीं रोका । उल्टा, हम उन्हें परेशान करते रहते हैं । नीमा नानी और नंदू नाना को हम परेशान करते, मगर बहोत ही प्यार से। वो हमें डाँटते हैं पर उनकी गालियों में भी प्यार झलकता है। पूरब कई बार हम पर गरम हो जाता पर वो दिल का बहोत अच्छा है । उत्तर भले ही अमेरिका में पढ़ाई करने गया हो पर हम उसका साथ महसूस कर सकते हैं । 'बूधन थियेटर' को यहाँ तक लाने में पूरे ग्रूप का संपूर्ण हाथ रहा है ।

मेरे जीवन की मजबूत डोर नाटक है। चाहे प्रोसिनियम नाटक हो या नुक्कड़ नाटक, ये दोनों ही मेरे जीवन के महत्वपूर्ण भाग हैं । अगर आज मैं ये सब कुछ लिख सकता हूँ तो ये नाटक की ही देन है । मेरा बोलना, उठना, चलना, बैठना, अगर आज लोग मुझे जानते हैं, तो वो सिर्फ नाटक की वजह से है । नाटक स्वयं को समझने की शक्ति के साथ, दूसरों की तकलीफों को समझने की शक्ति भी देता है । दूसरों का दर्द हम तक पहोंचाता है। नाटक के साथ अपने निजी जीवन के उतार-चढ़ाव में अपने आपको कैसे ढालना, ये

भी मैंने नाटक से ही तो सीखा है । नाटक से तो मेरा व्यक्तित्व ही बदल गया। नाटक ने हर जगह, हर वक्त, हर पल, हर मोड़ पर मुझे कुछ न कुछ सिखाया है । नाटक एक ऐसा प्रतिबिंब है जिस में हम अपनी एक ऐसी तस्वीर देख सकते हैं जो कुछ कहना चाहती है । नाटक द्वारा हम हज़ारों लोगों को बहोत कुछ कह चुके हैं । पर फिर भी कहने की प्यास अधूरी सी लगती है। नाटक के बाद मैं पूरी दुनिया को एक अलग नज़रिये से देख सकता हूँ। इसलिए नाटक मेरा प्रतिबिंब है। मैं अपने आपको बहोत खुश किस्मत मानता हूँ कि मैं एक नाट्य कलाकार हूँ मैंने अपने इस एक शरीर में न जाने कितनी आत्माओं को जीया है, न जाने कितने रंग-रूप और भेष बदले हैं । सच कहूँ यारों, अपने शरीर पर दूसरी आत्मओं का चोला पहनने का मज़ा ही कुछ और होता है । अपने आप में तो हर कोई जीता है, कभी अपने आप में दूसरों को भी जी कर देखो तब शायद ज़िंदगी के कुछ अलग मायने सामने आयेंगे ।

मैं 'बूधन थियेटर' से जुड़ा हुआ हूँ । 'बूधन थियेटर' और 'फेड इन थियेटर' में रहकर जो मैं सीखा हूँ, शायद ही कहीं और सीख पाता। 'बूधन' मेरे जीवन का महत्त्वपूर्ण भाग है जो हर वक्त और हमेशा मेरे साथ रहता है। जिस तरह दुनिया का शून्य से सर्जन हुआ, उसी तरह मेरा 'बूधन' से सर्जन हुआ। जैसे एक कोरे कागज़ को शब्दों से भरा जाता है उसी तरह मेरी आत्मा पर नाटक द्वारा कई शब्द लिखे जा चुके हैं । अब ये कभी मिटाए नहीं जा सकते। आत्मा से शरीर जुदा हो सकता है पर नाटक नहीं क्युंकि नाटक का संबंध सीधे आत्मा से होता है और कहते हैं कि आत्मा अमर है । मेरे खयाल से नाटक भी अमर है । नाटक भरतमुनि के समय से लेकर आज तक अमर है और हमेशा रहेगा । जिस तरह पृथ्वी के लिए सूर्य का महत्त्व है उसी तरह मेरे जीवन में नाटक का महत्व है और हमेशा रहेगा ।

ये था मेरा थियेटर के साथ, मेरे परिवार के साथ, मेरे अपने और दोस्तों के साथ मेरे जीवन का सफर । आप सोच रहे होंगे कि आखिर ये लिखने वाला है कौन। इसलिए अब मैं उसका परिचय करवाता हूँ। मैं जितेन्द्र इन्द्रेकर (जीतू) का प्रतिबिंब हूँ । ये सब मैं लिख सकता हूँ क्युंकि मैं उसकी आँखों

में देख सकता हूँ और वो मेरी। अगर इन्सान अपने आप से आँखें मिला ले तो वो दुनिया में किसी से भी आँखें मिला सकता है। जीतू छारानगर में अपने परिवार के साथ रहता है। उसके पिताजी का नाम हरीशभाई (डेनी) भुदर भाई इन्द्रेकर और माताजी, मीराबेन हरीशभाई ईन्द्रेकर है। जीतू की आँखों में देखकर ही आज उसका प्रतिबिंब उसके बारे में इतना कुछ लिख पाया है।

वो अपनी तीन बहनें, नम्रता, धर्मिष्ठा और मनीषा; तीन भतीजियाँ झरना, राजल, रुतुल और भाई-भाभी, राजेन्द्र और सेजल के साथ रहता है। उसके नाना-नानी और सभी मामा-मामी जीतू से बहोत प्यार करते हैं। वो अपने परिवार को हमेशा खुश रखने की कोशिश करता है। पर हमेशा नाटक, परिवार और पढ़ाई की कश्मकश में उलझा रहता है। वो अपने परिवार पर ज्यादा ध्यान नहीं दे पाता पर अपने परिवार से बहोत प्यार करता है। जीतू का मन बहोत दुखी है, पर उसके मन को समझनेवाला शायद कोई नहीं है। अब मैं उसके बारे में और क्या लिखुँ, बस मैं इतना ही लिख सकता हूँ।

किसी ने सच कहा है कि 'ये दुनिया एक रंगमंच है और हम सब इस रंगमंच के कलाकार'। भगवान हमारी कहानी का दिग्दर्शक है। उन्होंने जीतू को जो किरदार दिया है, देखते हैं जीतू उसे कहाँ तक निभा पाता है, देखते हैं कि उसकी आगे की ज़िंदगी उसे कहाँ ले जाती है।

v v v

मैंने नाटक को जीया है

अंकुर गारंगे

मैं छारा हूँ। मेरा जन्म छारानगर में हुआ है, वही छारानगर जो एक समय गुनहगारों की पाठशाला माना जाता था। मेरा जन्म छारानगर के एक सामान्य परिवार में हुआ। मेरे पिता का नाम विजयभाई और मेरी माँ का नाम अचलादेवी है। वो ज्यादा पढ़े-लिखे नहीं हैं पर फिर भी उन्होंने मुझे और मेरे छोटे भाई-बहनों को बहोत मेहनत- मजदूरी कर के पढ़ाया-लिखाया और काबिल बनाया।

बचपन की बात है। तब मेरी उम्र आठ या नौ साल की थी और मैं शायद पाँचवी कक्षा में पढ़ता था। उन दिनों मेरे पिताजी एक प्राइवेट फैक्टरी में मजदूरी करते थे। एक दिन उनके सेठ के साथ उनका झगड़ा हो गया और उन्हें नौकरी छोड़नी पड़ी। काफी दिनों तक पिताजी घर बैठे रहे। जितना पैसा था वो भी कुछ समय बाद खत्म हो गया। उसके बाद पिताजी हर रोज़ काम की तलाश में बाहर जाते। कभी काम मिलता, कभी नहीं भी मिलता। मेरे पिताजी बहोत ही खुद्दार इन्सान हैं। उन्होंने अपनी माँ से भी कभी कुछ नहीं माँगा। घर पर कभी खाना बनता, कभी नहीं भी बनता। काफी समय इसी तरह से गुजारा चलता रहा। उसी दौरान मेरी माँ की सबसे बड़ी स्वर्गवासी बहन जिनका नाम मंदोदेवी था, हमारे लिए भगवान बन कर आयी। वो रोजाना भिक्षा और पैसे माँगने जाया करती थी। जब वो घर वापस आती तब मैं उनके पास जाता। वो मुझे माँगा हुआ आटा और दो रुपए देती थी। उन पैसों से मैं लाल मिर्च ले आता। रोटी बनाकर, पानी में मिर्च घोलकर हम खाते। पर भगवान को शायद हमारे ये दिन भी ठीक नहीं लगे। एक दिन मेरी मौसी बीमार पड़ गयी। उन्होंने कुछ दिनों तक माँगने जाना बंद कर दिया। दो दिनों तक हमारे घर में चूल्हा नहीं जला। तब माँ मेरे छोटे भाई-बहनों को लेकर मौसी के

घर जाने लगी । मुझे पता था कि माँ खुद भूखी रह कर भी हम सब को खाना खिलाएगी । इतने में हमारे पड़ौसियों ने आकर कहा कि 'महावीर कसरतशाला' में बहोत बड़ा कार्यकम्र है । बड़े-बड़े लोग आ रहे हैं और वहाँ पर भोजन का भी इन्तज़ाम है । मैंने माँ से कहा, 'माँ, मैं वहाँ खाना खाने जा रहा हूँ। तुम सबको मौसी के घर लेके जाओ ।' माँ ने कहा, 'ठीक है ।' जब मैं वहाँ जाने के लिए निकला तो देखा कि मेरी चड्डी पीछे से फटी हुई है । माँ ने उसे टाँका दे दिया। मैं थोड़ी बड़ी कमीज पहनकर निकला ताकि किसी को फटी हुई चड्डी न दिखे । घर से बाहर निकला तब तेज धूप थी । पैरों में चप्पल भी नहीं थी । 'महावीर कसरतशाला' हमारे घर से बहोत दूर थी इसलिए रिक्शा में जाने का सवाल उठता था । पर पैसे कहाँ थे? मैं धूप में ही चल पड़ा । जब पैर ज्यादा जलने लगते तब कहीं छाँव देखकर कुछ पलों के लिए रुक जाता । जब राहत हो जाती तो फिर चलने लगता । इस तरह मैं कसरतशाला पहोंचा ।

जब वहाँ पहोंचा तो मैंने देखा कि एक बड़े से स्टेज पर कुछ लोग एक आदमी को मार रहे हैं । पास में एक औरत चिल्ला रही हैं । मैंने अपने दोस्त अजय से पूछा कि ये क्या हो रहा है । उसने बताया कि ये लोग 'नाटक' कर रहे हैं । मैं उन्हें बड़े ध्यान से देखने लगा । देखते-देखते मैं उस नाटक में इतना खो गया की मैं अपनी भूख भी भूल बैठा । हकीकत तो ये थी कि मेरा पेट नाटक से भर गया था । उस दिन मेरे जीवन में एक नया शब्द शामिल हुआ जिसका नाम था 'नाटक' । फिर अचानक बारिश हुई और सभी बंगला एरिया में एक हॉल पर खाना खाने गए । मैं भी वहाँ पहोंचा । खाना खाते हुए मैंने नाटकवालों को देखा। वो सभी छारानगर के ही रहनेवाले थे । मैंने निश्चय किया कि मैं भी एक दिन 'महावीर कसरतशाला' में नाटक करूँगा । फिर मैं वहाँ से निकल आया । उस दिन से मैं नाटक के बारे में गहराई से सोचने लगा और नाटक के प्रति मेरी रुचि बढ़ने लगी । एक दिन मैंने स्कूल से लौटते हुए एक काँच के दरवाजोंवाली दुकान देखी जो किताबों से भरी थी । वहाँ से गुज़रते हुए मैं रोज़ सबको अंदर किताबें पढ़ते हुए देखता था । उस दुकान पर 'मानसिंह छारा लाइब्रेरी' लिखा था । मुझे लगा कि शायद वो किसी बड़े

साहब का दफ़्तर है। फिर एक दिन मैंने वहाँ कुछ बच्चों को किताबें पढ़ते हुए देखा। उनमें अजय भी था। मैंने दूसरे दिन सुबह उससे पूछा, 'तुम वहाँ क्या कर रहे थे?' उसने कहा, 'हम वहाँ किताबें पढ़ने जाते हैं और हमें वहाँ नाटक भी सिखाया जाता है।' बस, नाटक का नाम सुनते ही मैंने उससे कहा कि मैं भी वहाँ आना चाहता हूँ। वो बोला कि मैं वहाँ बीस रुपए देकर सभ्य बन जाऊँ। मैं निराश होकर वहाँ से चला आया। दूसरे दिन स्कूल के मैदान में खेलते हुए मुझे इत्तफ़ाक से बीस रुपए मिले। मैं बेहद खुश हुआ। मेरे सारे दोस्तों ने कहा, 'तू कुछ खा ले और खिलौने ले ले।' पर मुझे तो नाटक सीखना था, किताबें पढ़नी थीं। मैं बीस रुपए लेकर सीधा लाइब्रेरी पहोंचा। वहाँ के लाइब्रेरीयन का नाम गौतम गुमाने था। मैंने उसे बीस रुपए दिए और लाइब्रेरी का सभ्य बन गया। उस दिन से मैं वहाँ रोज़ जाने लगा और छोटी-छोटी कहानियों की किताबें पढ़ने लगा।

वहाँ से हफ़्ते में एक दिन कुछ लोग शहर जाते थे। अजय भी उनके साथ जाया करता था। एक दिन मैंने उससे पूछा, 'अजय, तुम कहाँ जाते हो?' उसने बताया, 'हम मल्लिका साराभाई के घर नाटक सीखने जाते हैं।' मैंने कहा, 'अजय, मुझे भी वहाँ आना है। मुझे नाटक में रुचि है।' अजय ने कहा, 'आज रात हमारी मीटिंग है और कल हमें मल्लिका दीदी के यहाँ जाना है।' मैं रात का बड़ी बेसब्री से इन्तज़ार करने लगा। जब रात हुई तो मैं लाइब्रेरी पर पहोंचा। वहाँ मुझे दक्षिण बजरंगे मिले। दक्षिण सर नाटक के निर्देशक हैं। उन्होंने मुझे कुछ बोलने के लिए कहा। तब मैंने एक शायरी कही जो मुझे आज भी याद है,

मैंने तुझे प्यार किया लैला समझ के,
तेरे बाप ने मुझे फिंकवा दिया कचरे का थैला समझ के।

फिर दक्षिण सर ने मुझे किसी फिल्म का संवाद बोलने के लिए कहा। तब मैंने राजेश खन्ना की एक फिल्म का संवाद बोला जो मेरे पिताजी का बेहद पसंददीदा डायलॉग था।

दिल दे, दिमाग दे, जिस्म दे, जान दे, मगर ये पापी पेट न दे,

अगर ये पापी पेट दे, तो दो वक्त की रोटी का इंतजाम कर के दे,
वरना तुम्हें ये दुनिया बनाने का कोई हक नहीं ।

दक्षिण सर ने खुश होकर मुझसे कहा, 'तुम भी हमारे साथ शहर चलना।' दूसरे दिन निकलते वक्त मुझे एहसास हुआ कि मेरे पास पहनने के लिए अच्छे कपड़े नहीं हैं । मेरे चाचा ने मुझे दिल्ली से एक ट्रैक सूट लाकर दिया था। मैंने वही पहन लिया । पर पैरों में पहनने के लिए कुछ नहीं था । मैं मेरी ज़िंदगी में पहली बार शहर गया । इससे पहले मेरा जीवन छारानगर की गलियों में सीमित था। उस दिन हम उस्मानपुरा गए । वहाँ जाने से पहले मैंने सोचा था कि कोई छोटा सा घर होगा । पर जब मैं वहाँ पहोंचा तब देखा कि हमारे सामने एक आलीशान सा घर और बड़ा सा स्टेज है । घर का नाम था 'दर्पण अकादमी'। उस दिन हमारी अर्चन त्रिवेदी सर से पहली बार मुलाकात हुई। उन्होंने हमें नाटक सिखाना शुरू किया । वो मेरे जीवन के पहले नाट्य गुरु बने । मैं जब भी दर्पणा जाता, मुझे बहोत कुछ सीखने को मिलता । इसलिए मैं वहाँ बार-बार जाने लगा। मुझे वहाँ अन्य साथियों के साथ काम करने में बहोत मजा आता । एक दिन मुझे मेरा सुनहरा अवसर मिला। दर्पणा के नाट्यविभाग के प्रमुख, स्वर्गीय कैलाश पंड्या जिन्हें सब 'दादा' कहते थे, वहाँ आए और मुझे घूर-घूरकर देखने लगे । उन्होंने मुझे अपने पास बुलाया और मेरा नाम पूछा । मैंने डरते-डरते उन्हें अपना नाम बताया । फिर उन्होंने मुझसे पूछा, 'अगर मैं तुम्हें एक नया नाटक सिखाऊँ तो तुम सीखोगे?' मैंने उन्हें 'हाँ' कहा। उन्होंने मुझे एक बहोत ही अच्छा किरदार दिया। इस किरदार का नाम था, 'भटुरिया'। भटुरिया एक गरीब बच्चा था, बहोत ही मासूम और निडर था। भटुरिया इस नाटक में एक बहोत ही बड़े राक्षस का सामना करता है। बड़ी ही निडरता से वो उस राक्षस का नाश करता है। वो साबित कर देता है कि बुराई की हमेशा हार होती है, कि साधारण इन्सान कमज़ोर नहीं होता, उसमें अपार शक्ति भरी होती है। सिर्फ उस शक्ति का इस्तमाल करना आना चाहिए । इस किरदार द्वारा साहसिकता और निडरता का बोध मिलता है । भटुरिये का किरदार मुझे बेहद पसंद आया। कैलाश दादा ने मुझे नाटक के

बारे में बहोत कुछ सिखाया। हमारा नाटक बहोत सफल हुआ। इस नाटक के अलावा मुझे उस समय 'एकन माटी', 'स्त्री शक्ति', 'सर्वधर्म समभाव' और 'सत्यवादी चोर' जैसे नाटकों में भी काम मिला। ये नाटक गांधीजी के मूल्यों पर आधारित हे। जब सारे नाटक तैयार हो गए तब उनका शो करने की बारी आई। इसके साथ आया मेरी ज़िंदगी का सबसे यादगार पल। जिस भटुरिये के किरदार के लिए मैंने इतनी मेहनत की थी, शो के ऐन वक्त मैं उसके सारे डायलॉग भूल गया। मैं डर गया और रोने लगा। तब अर्चन सर ने प्यार से मुझे समझाया और कहा, 'कोई बात नहीं, बेटा। तुम अगली बार परफॉर्म करना।' कुछ दिनों बाद फिर से वही नाटक करने की बारी आई। इस बार नाटक छारानगर में करना था। मैंने 'भटुरिया' का परफॉर्मेन्स किया। सबको मेरा अभिनय बहोत ही पसंद आया और सबने नाटक की भी बहोत तारीफ की। मेरी ज़िंदगी का वो सबसे हसीन लम्हा कहें या मेरी खुशनसीबी कि उस दिन मुझे एक उपनाम मिला, 'भटुरिया'। ये आज भी मेरे नाम से जुड़ा है। मेरे माता-पिता ने उस दिन मुझे पहली बार रंगमंच पर देखा। इस तरह मेरा और नाटक का रिश्ता गहरा होता गया।

एक रात मैं सोया हुआ था तब किसी ने आकर मेरा दरवाजा खटखटाया। बाहर से किसी ने पूछा, 'अंकुर है?' माँ ने दरवाजा खोला। सामने विवेक खड़ा था। उसने कहा, 'भटुर, तुझे दक्षिण सर बुला रहे हैं।' मैं उनके पास पहोंचा। उनकी छत पर नाटक की रिहर्सल चल रही थी। उन्होंने मुझसे कहा, 'नाटक में एक छोटे बच्चे की भूमिका है, वो तुझे करनी है।' मुझे थियेटर मे लाने वाले दोस्त की वजह से मुझे एक बार फिर नाटक करने का मौका मिला। दरअसल वो किसी कारण से नाटक छोड़कर चला गया था और उसकी जगह मुझे मौका मिला था। उस नाटक का नाम 'बूधन' था। 'बूधन' भी सबर जमात का एक डी.एन.टी था, जिसे पुलीस एट्रौसीटी में थर्ड डिग्री टोर्चर देके मार दिया गया था। उसका गुनाह सिर्फ इतना था कि वो पश्चिम बंगाल की बदनाम सबर जाति का था। पश्चिम बंगाल के पुरूलिया पुलीस थाने के इन्सपेक्टर अशोक रॉय ने उसे थर्ड डिग्री टोर्चर देकर मार दिया था। बूधन की

दबाई हुई आवाज़ और उसकी बेगुनाही और मौत का रहस्य इस नाटक में प्रदर्शित होता था। बूधन की बीवी श्यामली उसके लिए न्याय की भीख माँगती थी। मैं उसके बच्चे 'बुधेव' की भूमिका निभा रहा था जो नाटक में सिर्फ इतना कहता है, 'बाबा उठो, उठो बाबा ।' ये वही नाटक था जिसे मैंने पहली बार महावीर कसरतशाला पर अभिनय होते देखा था। अचानक मुझे इसमें काम भी मिल गया । फिर ये नाटक लेकर हम भोपाल भी गए । भोपाल में हमने 'इंदिरा गांधी राष्ट्रिय मानव संग्रहालय' में इस नाटक का मंचन किया । तब मेरी उम्र दस साल थी । उसके बाद मुझे एक दूसरे नाटक में भी काम मिला । उस नाटक का नाम था 'दीपक पवार'।

दीपक पवार भी एक डी.एन.टी.था। वो महाराष्ट्र के सोलापुर की पारधी जमात का था। वो एक सीधा-साधा इन्सान था। दीपक पवार, उसकी पत्नी तनुजा पवार और उसका बच्चा भीख माँगने का धंधा करते थे, पर फिर उन्होंने अपना गुजारा करने के लिए दारू का धंधा शुरू किया। दारू का धंधा करने के बदले पुलीस ने दीपके से गाँववालों की मुखबरी करने को कहा पर वो ये काम नहीं कर पाता है । पुलीसवाले उसकी बीवी पर बुरी नज़र डालने लगते हैं। तब दीपक उनसे लड़ता है। इसलिए उसे मार दिया जाता है और उसकी मौत को एनकाउन्टर का नाम दे दिया जाता है । मैं उस नाटक में दिपक के बच्चे की भूमिका निभा रहा था।

कभी मैंने एक सपना देखा था और यूँ ही कह दिया था कि मैं भी एक दिन नाटक करूँगा । अब मेरा सपना सच हो गया था । एक दिन गणेश देवी सर, महाश्वेता देवी और लक्ष्मण गायकवाड हमारे यहाँ आए। उस अवसर पर 'महावीर कसरतशाला' में कार्यक्रम रखा गया । उस दिन मैं दर्शक नहीं, बल्कि एक कलाकार था । उस दिन हमने हमारे सारे नाटक पेश किये। सभी लोगों को ये नाटक बहोत अच्छे लगे । नाटक मंडली में मैं सबसे छोटा था। शायद इसलिए सभी मुझे बहोत सताते और मारते भी थे। क्युंकि मैं बच्चा था और सबको बहोत प्यारा था । इसलिए सभी को मुझे चिढ़ाना बहोत पसंद था। मैं तुरंत रोने लगता था । ज़िंदगी धीरे-धीरे नाटक के किरदार की तरह

बढ़ती गई । मेरे घर में भी बहोत मुश्किलें आती गयीं । मेरे पिताजी काम करते थे । घर की परेशानी देख मेरी माँ भी छारानगर में कपड़े बेचने का धंधा करने लगी और फिर कुछ समय के लिए हमारे घर के हालात सुधर गए । जब मैं 'दर्पण एकेडमी' जाता तो माँ मुझे दस रुपए दिया करती थी। इस तरह ज़िन्दगी का पहिया चलता गया ।

एक बार मेरी माँ का झगड़ा मेरी चाची के साथ हो गया। हम हमारा घर छोड़कर सुभाषनगर रहने चले गए । उस वक्त खुद का घर होने के बावजूद हमें किराए से रहना पड़ा क्युंकि हमारी दादी ने हमें घर में रहने से मना किया था । हम छारानगर प्राथमिक शाला में पढ़ते थे। हमें सुभाषनगर से स्कूल आने में बहोत तकलीफ पड़ती थी, इसलिए कुछ महीनों बाद मैंने वहीं के नोबलनगर की 'पद्मावती विद्याविहार' नाम की एक स्कूल में दाखिला ले लिया । मैं वहाँ पढ़ने जाने तो लगा पर वहाँ दोपहर का स्कूल होने से मुझे आलस आती थी । मैं नाटक के रिहर्सल में शामिल नहीं हो सकता था क्युंकि घर से छारानगर मुझे बहोत दूर पड़ता था । उस दौरान मैं नाटक से बहोत दूर चला गया । लेकिन जब भी छारानगर में कोई कार्यक्रम होता तो मैं ज़रूर आता था ।

यहाँ के अधिकतर लोग दारू का धंधा करते थे। हमने भी वहाँ पर दारू बेचना शुरू किया । पर हम घर पर दारू नहीं बनाते थे । मैं छारानगर जाता और दारू लेकर चला आता था । मैंने धीरे-धीरे पढ़ाई करना छोड़ दिया । मेरे पिताजी को डर लगने लगा कि कहीं उनके बच्चों का भविष्य खराब न हो जाए इसलिए वो हमें वहाँ से वापस छारानगर ले आए । स्कूल जाने के लिए फिर मुसीबत आन पड़ी, क्युंकि छारानगर से नोबलनगर की स्कूल बहोत दूर थी । इसी दौरान हमारे इम्तिहान आ गए । उन्हीं दिनों पिताजी की तबीयत अचानक खराब हो गई । ऐसी स्थिति में हम नोबलनगर अकेले नहीं जा सकते थे । इस कारण मेरे स्कूल का एक साल बिगड़ गया । छारानगर लौटने के बाद मैं घर में बेकार बैठा ये सोचने लगा कि क्या करूँ । मैंने फिर से लाइब्रेरी जाना शुरू किया और नाटक करने लगा । एक साल बाद मैंने छारानगर की

प्राथमिक शाला में दाखिला लिया और फिर से पढ़ाई शुरु की । मैं वर्ग में अव्वल आने लगा । पूरे एक साल बिगड़ने के बावजूद मेरा पढ़ाई से मन नहीं उठा । ऐसा सिर्फ नाटक की वजह से हुआ था । मैं सारे स्कूल का चहेता बन गया । पढ़ाई और नाटक करते-करते मैं लिखने भी लगा।

मैंने माता-पिता पर एक कविता लिखी थी । न जाने कैसे पर एक दिन मुझे कुछ लिखने की इच्छा हुई। फिर मैंने वो कविता लायब्रेरी के नोटिस बोर्ड पर लगायी । सबको वो कविता बहोत अच्छी लगी । दक्षिण सर ने मुझे बुलाया और ग्यारह रुपए इनाम दिया । ये मेरे जीवन का पहला इनाम-सम्मान था । उस समय हमारी लायब्रेरी में भांतु बोली का एक सामयिक रहता था ढोल । मुझे वो किताब पढ़नी बहोत अच्छी लगती थी । मैंने उन पैसों से वो किताब खरीद ली । आज भी वो किताब मेरे पास है । उसी दौरान एक गुजराती चैनल आरंभ हुआ । वो चैनल 'दर्पण अकादमी' के सहयोग से चलती थी। इस में दक्षिण सर, रोक्सी सर और संजय सर काम करते थे। 'दर्पण अकादमी' का हमें हमेशा से ही बहोत सहयोग रहा है। मुझे 'तारा चैनल' में छोटे बच्चों के कार्यक्रमों में काम मिलता रहा । मैंने कई गुजराती सीरीयलो में भी काम किया । इन में से एक का नाम था 'एक मोती एकल वायु'। इसमें मुझे एक अच्छा किरदार मिला था, बाकी सब में मुझे छोटे-छोटे किरदार मिले । इसी तरह ज़िंदगी से उलझते-सुलझते मैंने कई किरदार अदा किए ।

हमारे नाट्य संस्था में हमारे साथ कल्पना दीदी हैं जो मेरी सबसे ज्यादा देखभाल करती । वो हैं तो मेरी बड़ी बहन की तरह पर एक माँ की तरह मेरा खयाल रखती । एक बार जब कल्पना दीदी 'दर्पण अकादमी' के नाटक में काम कर रही थी तो नाटक में एक छोटे बच्चे की ज़रूरत पड़ी । कल्पना दीदी मुझे 'दर्पण अकादमी' ले गई। वहाँ जाकर मुझे पता चला कि अजय कुछ कारण से उस नाटक में नहीं रह पाया है । मुझे उसके स्थान पर ले लिया गया। उस नाटक का नाम 'आगगाड़ी' था जिसे चन्द्रवदन मेहता ने लिखा था। वो नाटक एक रेल्वे कर्मचारी 'बाघर' व्यक्ति के जीवन पर निर्धारित था। मैं उसके बेटे 'नारण' की भूमिका निभा रहा था और कल्पना दीदी हर बार

की तरह मेरी माँ का किरदार निभा रही थी। जब वो नाटक तैयार हुआ तब हमने उस नाटक के बहोत सारे मंचन किए।

मैं २६ जनवरी २००१ के रोज़ जब स्कूल में 'भटुरिया' नाटक का मंचन कर रहा था तब अचानक विनाशक भूकंप आ गया। उस दिन के बाद मैंने कभी 'भटुरिया' नाटक नहीं किया। हमारे स्कूल में छुट्टी हो गयी। हमें बगैर इम्तिहान के ही, पहले और दूसरे इम्तिहान के आधार पर पास कर दिया गया। मैं सातवीं कक्षा में अव्वल नंबर के साथ पास हुआ। फिर मैंने आगे की पढ़ाई के लिए नरोडा की 'उमा शिक्षण तीर्थ' नाम की एक शाला में दाखिला लिया। मैंने दाखिला लेते वक्त ही सर से पूछा , 'सर, क्या यहाँ नाटक होता है ?' सर ने जवाब दिया, 'पहले पढ़ाई तो करो।' मैं शाला में ध्यान लगाकर पढ़ने लगा। पर साथ-साथ नाटक भी करता रहा।

फिर से एक बार 'दर्पण अकादमी' में मुझे बुलवाया गया। वहाँ एक नया नाटक होनेवाला था, जिस में एक बच्चे की ज़रूरत थी। उस नाटक का नाम था 'चोखखे-चोखूखी बात' (साफ-साफ बात)। वो नाटक स्वच्छता के बारे में था। जिस दौरान इस नाटक के रिहर्सल चल रहे थे, युगोस्लाविया से एक मैडम आयी। उनका नाम था मैडम सनसायनिका। वो हमें अभिनय की शारिरक भाषा सिखाने आयी थीं। मैंने और मेरे सारे दोस्तों ने उनके वर्कशॉप में भाग लिया। बिना बोले अपनी बात शारीरिक परिभाषा से कैसे व्यक्त की जाती है हमने उस वर्कशॉप में सीखा। एक तरफ ये वर्कशॉप चल रहा था और दूसरी तरफ 'चोख्खे-चोख्खी बात' की रीहर्सल थी। वर्कशॉप में सीखते-सीखते हमने एक नाटक तैयार किया। उस नाटक का नाम था, 'नॉन वायलेन्स' (अहिंसा)। ये नाटक पूरे एक घंटे का था। ये नाटक खत्म हुआ और उसके दूसरे ही दिन मैं कच्छ-भुज जाने के लिए निकल गया। हम वहाँ नाटक करने गए थे। उस वक्त वहाँ भूकंप का समय चल रहा था। गुजरात के इस भूकंप में सबसे ज्यादा कच्छ-भुज में लोग मरे और वहाँ सबसे ज्यादा नुकसान हुआ था। इसलिए वहाँ मातम और दुःख का माहौल छाया हुआ था। भूकंप की वजह से वहाँ गंदगी फैली हुई थी। लोगों का मनोरंजन भी हो और गंदगी की

वजह से ज्यादा बिमारीयाँ न फैले, इस हेतु से हम वहाँ नाटक करने गए थे। हमें अमरिका की एक संस्था, 'केयर इंडिया' ने बुलाया था। उस वक्त ये संस्था बहोत ही उमदा कार्य कर रही थी। हमने कच्छ और भुज में करीबन तीस से पैंतीस मंचन किए । इसके मुझे कुछ दो हजार रुपये मिले, ये पैसे मेरी ज़िंदगी की पहली कमाई थी जिसे मैंने माँ और पिताजी को दे दिये। ऐसे ही मेरे जीवन का पहिया चलता ही गया और धीरे-धीरे मेरी उम्र' भी बढ़ती गई। नव्वी कक्षा में मैंने स्कूल के यूथ फैस्टीवल में भाग लिया। उस समय 'बूधन थियेटर' के मेरे साथी कलाकार, आलोक गागडेकर ने मुझसे 'शाहजहाँ' नामक नाटक में एकपात्र अभिनय तैयार करवाया । आंतरिक स्कूल स्पर्धा में इस नाटक के मंचन पर मेरा पहला नंबर आया। उसके बाद मेरी स्कूल में एक नयी पहचान बनी और सब मुझे नाटकवाले लड़के की तरह जानने लगे।

'बूधन थियेटर' में हम सिर्फ सत्य घटनाओं पर आधारित नाटकों का मंचन करते हैं। हम समाज के सामने नाटक द्वारा सत्य प्रदर्शित करते हैं। और समाज को उसका आईना दिखाते हैं जिसे सभी को स्वीकार करना पड़ता है। इसी तरह समय बीतता गया और मैं नए-नए नाटक करता रहा । साथ ही मैंने कई हादसे होते देखे । उनमें से एक हादसा ऐसा है जो मैं कभी भी भूल नहीं पाऊँगा। मुझे आज भी वो काला मंज़र याद है। मेरी उम्र पंद्रह या सोलह साल की थी जब गुजरात में २००२ के कौमी दंगे हुए। मैंने वो भयानक मंज़र अपनी आँखों से देखा था क्युंकि दंगे नरोडा पाटिया में भी हुए थे। मैं छारानगर में रहता था। पाटिया छारानगर से बहोत नज़दीक है। उस वक्त बरसों से साथ रहनेवाले हिन्दू और मुसलमान भाई किसी की जलाई हुई एक चिनगारी की वजह से एक दूसरे को मार रहे थे। मैंने अपनी आँखों के सामने मौत का तांडव होते हुए देखा था। मौत ने अपना ऐसा करतब दिखाया कि सब कुछ तहस-नहस हो गया। उस वक्त एक भाई को दूसरे भाई से लड़वानेवाले ये लोग तमाशा देखते रहे। उस वक्त हमारे छारानगर के रहनेवालों ने इन्सानियत का उदाहरण देते हुए कुछ मुस्लिम लोगों को बचाकर अपने घरों में छिपा रखा और फिर उनको कैम्पों तक पहोंचाया। जब मैं रात को सोता तो नींद में भी

डर जाता । मुझे डर लगा रहता था कि हमें भी इसी तरह कोई लोग मार डालेंगे। पर समय के साथ सब कुछ शांत होने लगा । फिर दक्षिण सर ने २००२ के दंगो पर आधारित एक नाटक लिखा। उस नाटक का नाम था 'मज़हब हमे सिखाता, आपस में बैर रखना'। उस नाटक का हमने छारानगर में ही मंचन किया। हम चाहते थे कि ये दंगे शांत हो जाएँ ।

दसवी कक्षा में मैंने पढ़ाई पर पूरा ध्यान लगाकर इम्तिहान दिए । इम्तिहान खत्म होते ही मैं पिताजी के साथ काम पर जाने लगा । पूरे दो-तीन महीने मैं थियेटर से दूर रहा । मेरा वजन दो-तीन महीनों में पूरे तीस किलो बढ़ गया। इसकी वजह थी कि मैं वहाँ लोहा उठाने का काम करता था । मुझे तो इस बात का अंदाजा तब हुआ जब नाटक करने वापस लौटा । दसवीं कक्षा में मेरा फर्स्ट क्लास आया । मेरा कोई ट्यूशन नहीं था। जिस तरह से मैं नाटक के डायलॉग याद करता था उसी तरह से मैं प्रश्नों के उत्तर तैयार करता था । नाटक मुझे पढ़ाई में बहोत लाभदायी हुआ था ।

इसी तरह मैंने अपने बारहवीं कक्षा तक की पढ़ाई पूरी की। आगे की पढ़ाई के लिए मैं एक ऐसे कॉलेज में पढ़ना चाहता था जहाँ नाटक होते हों। जिस कॉलेज में सबसे अच्छे नाटक होते थे उस कॉलेज का नाम था 'एच.के. आर्ट्स कॉलेज'। इस कॉलेज में मेरी बचपन से ही पढ़ने की बहोत इच्छा थी। पर बारहवीं कक्षा में सिर्फ सत्तावन प्रतिशत आने के कारण मुझे उस कॉलेज में दाखिला नहीं मिल सका। तब मैंने 'सी. यु. शाह आर्ट्स कॉलेज' में दाखिला लिया। मैंने पढ़ने के अलावा कॉलेज की अन्य प्रवृत्तियाँ जैसे 'राष्ट्रीय सेवा आयोजन' में भी भाग लिया। मुझे राष्ट्र की सेवा करने में बहोत खुशी होती थी। मैं राष्ट्र सेवा करना गर्व की बात मानता हूँ।

मैंने कॉलेज के 'युथ फैस्टिवल' में भी भाग लिया। हम फाइनल तक पहोंचे पर फिर हार गए । पर हमारी अंग्रेजी की प्रौफेसर दीपीका मैडम हमें हारने की भी पार्टी देती थीं और हमें उत्साहित करती थीं। कॉलेज काल के दौरान दीपीका मैडम और भालचन्द्र जोशी सर जो हमारे प्रिन्सिपाल थे, उन्होंने हमें हर वक्त प्रोत्साहित किया और जीवन में आगे बढ़ने की प्रेरणा दी । इस

तरह 'सी.यु. शाह सीटी आर्ट्स कॉलेज' में भी मुझे बहोत कुछ सीखने को मिला। कॉलेज काल के दौरान मुझे एक नयी पहचान मिली क्युंकि मैंने कॉलेज में बहोत नाटक किए । साथ-साथ मैं 'बूधन थियेटर' में भी नाटक करता रहा। 'बूधन थियेटर' में मैंने 'मुझे मत मारो साब' नाटक भी किया । ये नाटक हमारे सभी नाटकों का कोलाज है। मैं जब उसका पहला शो करने जा रहा था तब मेरी मौसी का लड़का आखिरी साँसें ले रहा था । मैंने अपनी ज़िम्मेदारी पूरी की और नाटक करने गया । जब वापस लौटा तो वो इस दुनिया से चल बसा था । आखिरी बार उससे बात भी करना नसीब नहीं हुआ । जब मैं प्रथम वर्ष में उत्तीर्ण होकर दूसरे वर्ष में आया, तब आलोक भैया राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की पढ़ाई पूरी कर 'बूधन थियेटर' में वापस लौट आए। तब उन्होंने हमारे साथ एक नए नाटक की शुरूआत की। वो नाटक अम्मा (महाश्वेता देवी)की 'स्तनदाइनी' कहानी पर आधारित था। आलोक भैया ने इस नाटक को नाम दिया, 'चोली के पीछे क्या है'?' इस नाटक में औरत के जीवन के संघर्ष की बात हैं। इसमें 'जशोदा' नाम की औरत जो कहानी की मुख्य किरदार भी थी, वो अपने घर का गुज़ारा चलाने के लिए अपनी छाती का दूध बेचती है। वो उसी से अपने परिवार का गुजारा करती है। इस से अंत में उसे स्तन केन्सर हो जाता है और वो तड़प-तड़प के मर जाती है। इस नाटक में मैंने जशोदा के बच्चे की भूमिका निभाई । इस नाटक द्वारा मुझे नाटक का एक नया प्रकार देखने को मिला । एक व्यक्ति का किरदार दो व्यक्ति कैसे कर सकते हैं। इसे मिरर, यानी आईना कहा जाता है। एक बार इसके रिहर्सल के दौरान मैं वक्त पर नहीं पहोंच पाया। मैं पूरे ढाई घंटे देर से पहोंचा । आलोक भैया ने मुझे बाहर बिठाया और नाटक से निकाल दिया । मैंने उनको बहोत समझाने की कोशिश की पर उन्होंने मेरी एक न सुनी । मुझे इस बात का बहोत दु:ख हुआ कि इतनी मेहनत करने के बावजूद मुझे नाटक से निकाल दिया गया था। उस दिन मुझे मेरी गलती का बहोत अफसोस हुआ । ज़िन्दगी में पहली बार मैं कहीं देरी से पहोंचा था । मुझे ये सज़ा मौत से भी बद्तर लगी । मुझे ऐसा महसूस हो रहा था कि जैसे मेरे शरीर से किसी ने प्राण ही निकाल लिए

हों।

लेकिन ये अच्छा हुआ कि मैं अपने कैरियर की पहली सीढ़ी पर चढ़ा ही था कि अपनी गलती के कारण गिर पड़ा। इसलिए मुझे इतनी भी चोट नहीं आई। अगर मैं अपनी मंज़िल तक आकर वहाँ से गिरता तो अपने आपको सँभाल नहीं पाता। मैं भगवान और आलोक भैया का शुक्रगुज़ार हूँ। उन्होंने मुझे अच्छी सीख दी कि, 'नाटक में आठ लोग हैं, आठ में ढाई घंटे का गुणा कर तो तुझे पता चलेगा।' पर नाटक से निकाल दिए जाने के बावजूद मैं अपने ग्रूप से अलग नहीं हुआ। 'चोली के पीछे क्या है?' जब 'दर्पण अकादमी' में इस नाटक का शो था तब मैं वहाँ बैक स्टेज मदद के लिए जाता। उस वक्त शो के अगले दिन आलोक भैया के मन में न जाने क्या आया कि उन्होंने मुझे नाटक में वापिस ले लिया। उस दिन मैं बहोत खुश हुआ। मुझे मेरे धीरज का फल मिला। मैंने नाटक में अभिनय किया। फिर चेन्नई में शो किया और हैदराबाद में भी परफॉर्म किया।

हैदराबाद में हमारी महेमानगति बहोत ही अच्छी हुई। वहाँ के लोगों ने हमारा नाटक देखा, फिर उसके बाद वो हमारे पास आए, हमसे बात-चीत की और हमें सराहा। हम कलाकार जीवन में बस एक ही चीज के भूखे होते हैं और वो है सम्मान। हमें हैदराबाद में बहोत मान और सम्मान मिला। इसी तरह हम जहाँ भी दूसरे राज्यों में नाटक करने जाते तो हमें वहाँ बहोत अच्छा अनुभव होता।

'भाषा' संस्था ने 'बूधन थियेटर' को जन्म दिया ओ इसकी हमेशा मदद की है। 'बूधन थियेटर' को अपना एक अंग मानती है। गणेश देवी सर हैं हमारे लिए भगवान समान हैं। आज हम उनकी वजह से अपनी एक पहचान बना पाए हैं। वो हमारी प्रगति के लिए बहोत कुछ करते हैं। हमें अपनी पढ़ाई के लिए स्टाइपैंड दी गई। साथ में अलग-अलग जिम्मेदारियाँ दी गयीं। मुझे और मेरे दोस्त मिणेकर हितेष जिसे सब 'गांधी' के नाम से जानते थे, हम दोनों को 'चिल्ड्रेन थियेटर', सौंपा गया। हमने पूरी महेनत से बच्चों के साथ थियेटर शुरू किया। धीरे धीरे बच्चो की संख्या सौ तक पहोंच गई। मैंने

गांधी के जीवन पर बच्चों से कई नाटक करवाये। बच्चों को नाटक करने में बहोत मज़ा आता । वो जब एक दिन नाटक नहीं करते तो उन्हें अच्छा नहीं लगता था । ये देखकर मुझे बहोत खुशी होती थी। लायब्रेरी में अपने बच्चों को आता देख उनके माता-पिता भी बहोत खुश होते । बच्चों का थियेटर बहोत ही अच्छी तरह से चल रहा था पर इस दौर कुछ परेशानियाँ आईं और मैं बच्चों को नाटक अच्छी तरह से नहीं सिखा पा रहा था। मैंने अपनी मर्ज़ी से दक्षिण सर से कह दिया, 'सर, मैं अब 'चिल्र्डन थियेटर' नहीं सँभाल पाऊँगा, कृपया करके आप मुझे कोई दूसरा काम दे दीजिए।' दक्षिण सर ने मेरी बात मानी और मुझे एक दूसरा काम दे दिया। मुझे डॉक्युमेन्टेशन का काम मिला। मैंने उसे भी बड़ी बखूबी से निभाया। 'चिल्ड्रेन थियेटर' का अनुभव मेरे लिए बहोत ही महत्त्वपूर्ण था क्युंकि एक समय था जब मैं एक बच्चा था पर अब मैं दूसरे बच्चों को नाटक सिखा रहा था। 'चिल्ड्रेन थियेटर' छोड़ने का मुझे आज भी बेहद अफसोस है। मेरे बाद आतिष ने उसकी डोर सँभाली। वो मुझसे भी अच्छा अभिनेता और दिग्दर्शक है। साथ ही वो बहोत अच्छा इन्सान भी है उसने 'चिल्ड्रेन थियेटर' को खुबी निभाया ।

मैं नाटक के बारे में बहोत कुछ सीखना चाहता था और उसकी गहराई तक जाना चाहता था। नाटक करने से मेरे जीवन में बहोत बदलाव आया है। नाटक के कारण मेरे परिवार और समाज में मुझे एक अलग स्थान मिला है।

एक बार 'राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय' के प्रौफेसर, दिनेश खन्नाजी, छारानगर आने वाले थे। मुझे उनसे मिलना था । उसी सुबह अचानक मेरा मौसेरा भाई छत से गिरकर मर गया । मैं उसके दु:ख में बैठा था । तभी मुझे मेरे दोस्त जीतू का फोन आया । उसने कहा 'अंकुर, आना ज़रूरी है ।' तब मैं मैयत छोड़कर वहाँ गया । थियेटर ने हमें मुश्किलों का सामना करना सिखाया है । 'बूधन थियेटर' में आने से मेरी एक पहचान बनी है । पहले हमें चोर-लुटेरे कहा जाता था पर आज हमने थियेटर और नाटक के माध्यम से अपनी एक अलग पहचान बनाई है । पहले छारानागर को 'गुनहगारों की पाठशाला' कहा जाता था, अब उसे 'कलाकारों की पाठशाला' माना जाता है। 'बूधन थियेटर'

की वजह से मुझे हिन्दुस्तान के कई क्षेत्र देखने को मिले वरना मेरी अहमदाबाद शहर में घूमने की भी हैसियत नहीं थी । आज मैं कहीं भी जाता हूँ तो गर्व से कह सकता हूँ कि मैं छारानगर से आया हूँ । अब लोग मुझे चोर नहीं पर एक कलाकार की तौर से देखते हैं । 'बूधन थियेटर'की वजह से हमने सच्चाई के लिए लड़ना सीखा है ।

नाटक के अलावा मुझे जीवन में आगे बढ़ने के लिए जिन्होंने प्रेरणा दी उनमें कई लोग हैं। मेरे आदर्श स्वरूप मेरे पिताजी और माताजी जिन्होंने अपने जीवन में असह्य यातनाओं और तकलीफों को सहन कर के हमे पढ़ाया-लिखाया और काबिल बनाया । मेरे बड़े भाई अनीष कुमार जिन्होंने हिन्दी विषय में स्नातक और अनुस्नातक की पदवी हासिल की और पत्रकारिता में डिप्लोमा किया । मेरा छोटा भाई विरेन्द्रकुमार जिसे हम प्यार से पीन्टु कहते हैं। वो मनोविज्ञान विषय के साथ कॉलेज के दूसरे वर्ष में अभ्यास कर रहा है और साथ ही में सलाहकार मनोवैज्ञानिक का डिप्लोमा भी कर रहा है। फिर उससे छोटा भाई विरल जो मुख्य विषय अंग्रेजी के साथ पढ़ रहा है। और मेरी सबसे छोटी बहन जोनिका जिसने नव्ही कक्षा तक पढ़ाई की, फिर छोड़ दी। उसका पढ़ाई में मन नहीं लगता था। वो घर में सबकी लाड़ली है और घर में सबसे ज्यादा उसका ही हुक्म चलता है। वो बहोत ही निडर है और किसी के भी सामने सच बोलने से नहीं डरती। मैं दुनिया में जिसे सबसे ज्यादा प्यार करता हूँ वो मेरी मौसेरी बहन रंभा का बेटा मंथन है। उसे देखे बगैर मैं एक पल नहीं रह सकता । मेरी बहन की दूसरी भी संताने हैं, सेजल, मनन और आदित्य । इन सबको मैं प्यार करता हूँ पर मंथन को सबसे ज़्यादा चाहता हूँ।

मेरे परिवार के अलावा भी कई लोगों का मुझ पर प्रभाव हुआ। जैसे देवी सर, दक्षिण सर, रोक्सी सर और रतन सर जो मुझे बचपन में सलाह देते थे कि जीवन में कितनी भी तरक्की कर लो पर 'दिमाग में राय मत भरना', कभी अभिमान मत करना। उनकी ये सलाह मेरे जीवन में बहोत ही लाभदायी सिद्ध हुई है। संजय घमंडे सर मुझे बचपन से ही जीवन में आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करते रहे। मेरे जीजाजी प्रवीण इन्द्रेकर ज़रूरत पड़ने पर हर वक्त

मेरी मदद करते और मुझे सही मार्गदर्शन देते। मेरे दोस्तों में हैं आतीष, यश, श्रीकान्त, निर्मेष, अमित, जय, स्नेहल, रजनी, जिग्नेश, सुशील, निखील, संदीप, साहिल और मेरा सबसे करीबी दोस्त, अर्जुन घासी इन्होंनो मेरा हर वक्त होसला बढ़ाया । अर्जुन ने मुझे जीवन के कई मोड़ पर सँभाला है। वो बहोत अच्छा इन्सान है। मेरी बहन कम और दोस्त ज्यादा, झंझा ने मेरे जीवन की हर राह पर मेरा साथ दिया है। अगर किसी को मेरे बारे में जानना होता तो वो झंझा से मेरे बारे में पूछता और उसके बारे में मुझसे हमारी दोस्ती और भाई-बहन का रिश्ता बहोत गहरा है। 'जय शक्ति हाइड्रोलिक वर्कस' जहाँ मेरे पिताजी नौकरी करते हैं, उसके मालिक रतिलाल रामभाई पटेल ने भी हमारी बहोत मदद की। मैं उनका और जिन्होंने मुझे जीवन के हर मोड़ पर प्रेरणा और साथ-सहकार दिया है, उन सबका एहसान मानना नहीं भूलूँगा।

मेरा मानना है कि इन्सान को अपने जीवन में एक बार नाटक ज़रूर करना चाहिए। अब तक मैंने जीवन में कुछ पच्चीस एक नाटक किए हैं जिनके सात सो से ज्यादा मंचन हुए हैं। थियेटर के माध्यम से मैंने मेरी जिंदगी का सबसे महत्वपूर्ण काम किया है। मैंने और मेरे दोस्त, गांधी ने मिलकर हमारी भांतु भाषा को इतिहास के पन्नों पर लिखने की कोशिश की है। हमने हमारी भांतु बोली की 'सचित्र शब्दावली' बनायी है।

तो ये थी नाटक के पहले और उसके बाद के वर्ष, इन्हें बातें कहो या कहानी मेरे इन बारह वर्षों के जीवन की यात्रा में मैंने अपने जीवन की सारी सच्चाई लिखी है। मैं कोई महान लेखक नहीं कि ज्यादा कुछ लिख पाऊँ। मैं एक सामान्य इन्सान हूँ जो अपनी बात आप से कह रहा है। आपका चहिता 'भटुरिया'बस यहाँ आप से अपने जीवन के कुछ अनुभवों के बार में बात करना चाहता है। दुआ करना की जिस तरह से मेरे जीवन की शुरूआत नाटक के साथ हुई, उसी तरह मेरा अंत भी नाटक के तख्ते पर हो। 'बूधन थियेटर' का मुझ पर ये एहसान हमेशा रहेगा कि उसने मुझे मेरे जीवन साथी से मिलाया जो जीवन में हर वक्त मेरे साथ रहेगा। मेरा नाटक और मैं हमेशा उसके साथ रहेंगे। और बस यूँ ही पूरा जीवन गुज़र जाएगा।

v v v

मैं और मेरे किरदार

आतिष इन्द्रेकर

नमस्कार दोस्तों !

मैं पिछले दस सालों से 'बूधन थियेटर' से जुड़ा हूँ। मैं आपके साथ इन वर्षों की कुछ बातें करना चाहता हूँ। तो आइए, पहले से शुरूआत करते हैं।

नाटक क्या है, नाटक किसे कहा जाता है, मुझे कुछ पता नहीं था। लेकिन मेरे पिताजी एक बहोत अच्छे अभिनेता थे। वो अक्सर शाम को दफ्तर से लौटते और कहते, 'मैं रिहर्सल के लिए जा रहा हूँ।' रोज़ ऐसा ही होता। एक दिन हर रोज़ की तरह पिताजी शाम को दफ़्तर से लौटे और मम्मी से कहा, 'मैं रिहर्सल में जा रहा हूँ।' उस दिन मुझसे रहा नहीं गया और मैंने पिताजी से पूछ ही लिया, 'पिताजी, ये रिहर्सल क्या होती है ?' पिताजी ने मुझे बताया, 'बेटा, मैं नाटक में काम करता हूँ, इसलिए मुझे रिहर्सल यानि प्रैक्टिस करने जाना पड़ता है।' मेंने कहाँ, 'मुझे भी आपका नाटक देखना है।' पिताजी मुझसे कहने लगे, 'वहाँ तुम्हारा क्या काम है ? वहाँ बच्चे नहीं आते,' वगैरे। लेकिन मैं बहोत ज़िद करने लगा इसलिए पिताजी मुझे अपने साथ ले गए। तब मैं सातवीं कक्षा में पढ़ता था।

वहाँ पहोंचते ही पिताजी के ग्रूपवालों ने रिहर्सल करनी शुरू की। मैं पापा को नाटक करते देख रहा था। नाटक की रिहर्सल खत्म हुई। घर आते समय रास्ते में मैंने पापा से पूछा, 'बूधन साबर कौन है ? ये डी.एन.टी, चोर, इन सबका मतलब क्या है, और आप लोग इसके लिए नाटक क्युं कर रहे हो?' तब पापा ने बताया, 'हमारी छारा जाती को जन्मजात गुनहगार माना जाता है, हमें चोर कहा जाता है।' उन्होंने समझाया कि, डी.एन.टी. का

मतलब होता है, 'डीनोटिफाईड और नोमैडिक ट्राइब्स'। 'ट्राइब्स' यानि कि आदिवासी। 'तुमने बूधन के बारे में सुना है ? बूधन सबर भी एक डी.एन.टी. था। बूधन कलकत्ता का रहनेवाला था। वहाँ की पुलीस ने उस पर चोरी का झूठा आरोप लगाकर उसे मार दिया था। इसलिए हम इस घटना के खिलाफ ये नाटक कर रहे हैं। इस नाटक का नाम भी 'बूधन' ही है'। मैंने पापा से कहा, 'मैं भी नाटक करना चाहता हूँ।' 'लेकिन नाटक तो बड़े करते हैं। तुम तो अभी काफी छोटे हो', पापा ने मुझसे कहा। लेकिन मेरी ज़िद थी कि मुझे नाटक करना है। पापा ने कहा, 'हमारे छारानगर में लायब्रेरी है। वहाँ छारानगर के बहोत से बच्चे आते हैं। वहाँ वो किताबें पढ़ते हैं, नाटक भी करते हैं। तुम भी वहाँ जाया करो।'

मैं लायब्रेरी में जाने लगा। वहाँ जाकर पढ़ने लगा। बहोत कुछ सीखा, साथ-साथ अच्छे साथियों से दोस्ती भी हुई। एक दिन वहाँ के लायब्रेरियन ने हमसे कहा,'तुम में से जिसे भी नाटक करना हो, अपना नाम लिखवा देना, सबका ऑडिशन लिया जाएगा।' पता चला कि ऑडिशन दक्षिण बजरंगे लेने वाले हैं। उस दिन मैं बहोत खुश हुआ कि अब मुझे भी नाटक करने का मौका मिलेगा। मैं भागता-भागता घर गया और पापा को ये बात बतायी। पापा ने मुझसे कहा, 'तुम स्कूल की किताबों में से कोई कविता या डायलॉग तैयार कर लो, बस !' मैंने किताब में से एक डायलॉग तैयार किया और उसकी खूब जमकर प्रैकिटस भी की। ऑडिशन का दिन आया। मुझे डर लग रहा था कि सब के सामने मैं कैसे बोलूँगा। मैंने पापा को बताया। पापा ने कहा, 'डरने की कोई बात नहीं है। जब मैं नाटक कर रहा था तो क्या मैं डर रहा था? तो फिर तुम क्युं डर रहे हो ? अपने आप में आत्मविश्वास लाओ तो संवाद अपने आप बोल पाओगे।' ऑडिशन में दक्षिण सर ने मुझे चुना। इस तरह से हम बच्चों का एक ग्रूप तैयार हो गया। फिर हम 'दर्पण अकादमी' गए। वहाँ हमें अर्चन त्रिवेदीजी और कैलाश पंड्याजी से मिलवाया गया। उन्होंने हमें डायलॉग बोलना, विभिन्न हाव-भाव जताना, मंच पर काम करना, आदि बहोत कुछ सिखाया। उसके बाद हमें पाँच नाटकों का प्रोजेक्ट

मिला। उसमें से मैं दो नाटकों में चुना गया। उस प्रोजेक्ट का नाम 'हेरिटेज' था। यहाँ से मेरे नाटक का सफ़र शुरू हुआ। ये नाटक हम लोगों ने ३१ अगस्त, यानि विमुक्त दिन मनाने के लिए तैयार किए। मुझे डर लग रहा था कि मैं संवाद भूल जाऊँगा। लेकिन फिर पापा की बात याद आयी और मुझ में विश्वास जागा। मैंने बहोत अच्छा अभिनय किया। इसके बाद दक्षिण सर ने मुझे उनके साथ काम करने का मौका दिया। नाटक भी वही था जो मेरे पापा करते थे, 'बूधन'। मुझे उसमें एक छोटा सा किरदार दिया गया। मुझे खुशी हुई कि मुझे इस किरदार के काबिल समझा गया। दक्षिण सर ने मुझे बहोत अच्छे से सिखाया कि नुक्कड़ नाटक में कैसे बोलना चाहिए, उसमें मूवमेन्ट किस तरह की होनी चाहिए।

'बूधन' के बाद हमने 'भोमा', 'मज़हब हमें सिखाता, आपस में बैर रखना', जैसे नाटक किए। ये सभी नाटक किसी न किसी सत्य घटना पर आधारित थे। मैंने थियेटर करते हुए कई कठिनाइयों का सामना किया। वो वर्कशॉप मुझे अच्छी तरह याद है जो 'दर्पण अकादमी' के माध्यम से हमें करने को मिली थी। वर्कशॉप का विषय था, 'नॉन वॉयलेन्स', यानी कि अहिंसा। उस वर्ष मैं दसवीं कक्षा मैं पढ़ रहा था। उस समय मेरी परीक्षा बहोत ही नजदीक थी पर कार्यशाला भी करना ज़रूरी था। एक तरफ ट्यूशन रहता था, दूसरी तरफ घरवालों की गालियाँ सुननी पड़ती थीं। लेकिन मैंने कार्यशाला में भाग लिया और परीक्षा की तैयारी भी की। थियेटर में प्रतिबद्धता बहोत ज़रूरी होती है। मैं परीक्षा में पास हुआ। इससे मेरे घरवाले बहोत खुश हुए थे। पापा तो मेरा हमेशा साथ देते थे लेकिन मम्मी थोड़ा गुस्से में बोला करती। हालाँकि, प्यार भी वो इतना ही करती।

जब से मैंने थियेटर शुरू किया, मुझ में बहोत परिवर्तन आया है। आज किसी के सामने बोलने या किसी व्यक्ति से आँखें मिलाकर बात करने में मुझे झिझक नहीं होती। ये मैंने थियेटर से सीखा है। थियेटर में सबसे अच्छा अनुभव 'मुझे मत मारो साब' नाटक के दौरान हुआ। ये नाटक हमें शहर के हर गाँव-गली में करना था। इस नाटक का हर परफॉर्मेन्स करते समय मुझे

एक नया अनुभव हुआ । हर चाली में, हर गली में नाटक देखते हुए दर्शकों से आँखें मिलाकर बात करना मैंने सीखा ।

नाटक का मेरा दूसरा अच्छा अनुभव दिल्ही से आए निर्देशक, प्रणव मुखर्जी के साथ हुआ । वो बहोत अच्छे निर्देशक हैं । उन्होंने हमारे ग्रूप के साथ एक नाटक तय किया । उन्होंने हमारे ग्रूप को बुलवाया और नई तरह की एक्सरसाइज़ करवायी । मैं दो दिन तक उनकी कार्यशाला में गया लेकिन फिर कुछ मुश्किलों की वज़ह से नहीं जा सका । मुझे इस बात का दु:ख भी हुआ। उस नाटक का नाम था 'हैमलेट इन छारानागर'। उसका प्रदर्शन 'दर्पण अकादमी' में हुआ था । फिर दो दिनों के बाद इस नाटक का दूसरा परफॉर्मेन्स हुआ अहमदाबाद के 'क्रोसवर्ड' में । इस वक्त नाटक में काफी सारे रिप्लेसमेन्ट हुए क्युंकि हमारे ग्रूप के दो लड़के अचानक किसी वजह से शामिल नहीं हा सके थे । दक्षिण सर ने हमसे पूछा, 'क्या तुम ये नाटक करोगे?' मैंने और मेरे दोस्त जीतू, दोनों ने 'हाँ' कहा । नाटक में कुछ कविताएँ भी थीं। रिहर्सल के लिए हमारे पास सिर्फ एक ही दिन था । उसी दिन नाटक के निर्देशक प्रणव मुखर्जी बहोत बीमार हो गए । उस दिन रिहर्सल भी नहीं हो पायी थी। लेकिन कविता हमने तैयार कर ली थी । हम अभिनय करने जा पहोंचे । वहाँ जाकर तुरन्त हम लोगों ने नाटक के कपड़े पहने। परफॉर्मेन्स करने के लिए पाँच मिनट ही बाकी थे । मुझे थोड़ा डर लग रहा था । मैं अपने आपसे पूछने लगा, 'क्या मैं ये नाटक कर पाऊँगा ? मुझसे कोई गलती हुई तो?' लेकिन मुझे विश्वास था कि मैं अभिनय कर पाऊँगा क्युंकि ये नाटक जिन एक्सरसाइज़ पर बना था, वो सब मुझे आती थीं । बहरहाल, परफॉर्मेन्स शुरू हुई । मैंने कविता भी बोल दी । मैंने अपने आपको उस नाटक में पूरा अंर्तभूत कर लिया । नाटक खत्म हुआ । प्रेक्षकों को भी पसंद आया । प्रणव जी ने हमें शाबासी दी । ये अनुभव यादगार बन गया ।

उसके बाद हम सभी कलाकार एक दूसरे से मिल नहीं सके क्युंकि सबकी परीक्षाएँ शुरू हो चुकी थीं । मैं तब बारहवीं कक्षा में पढ़ रहा था और मेरी वार्षिक परीक्षा चल रही थी । चार पेपर खत्म हो चुके थे । इतने में ही घर पर

दक्षिण सर का फोन आया । वो तब मुंबई में थे । उन्होंने फोन पर कहा, 'मणिनगर की बस्ती तोड़ दी गई है, लोगों को घर से बेघर कर दिया गया है। हमें इसका विरोध करने के लिए तुरन्त भूख हड़ताल पर उतरना है और इस अवसर पर नाटक भी करना है । गणेश देवी सर भी अहमदाबाद आ रहे हैं ।' मैंने दक्षिण सर से कहा कि मेरी बारहवीं की परीक्षा चल रही है और दूसरे दिन अंग्रेजी का पेपर है । दक्षिण सर ने कहा कि अहमदाबाद म्युनिसिपल कॉर्पोरेशन के सामने ये नाटक करना ज़रूरी है । मैंने कहा, 'ठीक है, कुछ सोचता हूँ ।' मैं सोच रहा था कि घरवालों से क्या कहूँ, कैसे मुझे पढ़ने से छुट्टी मिल पाएगी। हमें एक बजे निकलना था । मैंने घरवालों से कहा, 'मैं अंग्रेजी की ट्यूशन पर जा रहा हूँ, सर ने मुझे बुलाया है ।' मैंने दो-तीन किताबें ली और लायब्रेरी पर पहोंचा । वहाँ सभी साथी मौजूद थे । मैंने उन्हें कुछ बताए बगैर किताबें लायब्रेरी पर रखीं और निकल पड़ा नाटक करने के लिए। कॉरपोरेशन पर जाकर नाटक किया और भूख हड़ताल भी । देवी सर हमारे साथ थे । उस दिन फैसला भी हमारे पक्ष में आया । मैं लायब्रेरी से किताबें लेकर घर गया और घर जाकर पढ़ाई में लगा रहा । घरवालों को कुछ पता भी न चला । मेरी परीक्षा भी खत्म हो गई । अंग्रेजी की परीक्षा भी अच्छी रही । फिर एक दिन मैं लायब्रेरी पर गया । वहाँ जाकर पता चला कि आलोक सर मुम्बई से हमारे साथ एक नया नाटक करने के लिए आ रहे हैं । आलोक राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय से पास आउट हुए थे और अब मुम्बई में बस गए थे। आलोक सर ने आकर हम लोगों के साथ चर्चा की और कहा कि हम महाश्वेता देवीजी का लिखा हुआ नाटक करेंगे । उन्होंने नाटक भी चुन लिया था । 'चोली के पीछे क्या है ?' नाटक अंग्रेजी में था लेकिन उसका हिन्दी में अनुवाद हुआ था । नाटक की रिहर्सल शुरू हुई । रिहर्सल के दौरान उन्होंने हमें स्क्रिप्ट समझाई और नई-नई एक्सरसाइज़ भी करवायी । फिर किरदार के मुताबिक सभी का चयन हुआ। सभी की कास्टिंग हो गयी थी । सिर्फ मेरी बाकी थी। मैंने आलोक सर से पूछा, 'अभी तक मेरी कास्टिंग क्युं नहीं हुई?' उन्होंने कहा, 'मैंने तुम्हारा कास्टिंग बच्चे के रोल में किया है । इस नाटक की स्त्री

किरदार यशोदा है, तुम उसके बच्चे रहोगे और तुम्हें अंग्रेजी में संवाद बोलने हैं।' मैंने आलोक सर से कहा, 'मैंने आज तक अंग्रेजी में नाटक नहीं किया है।' वो बोले, ''डरने की कोई बात नहीं है, मैं तुम्हें सिखाऊँगा।'' उन्होंने मुझे डायलॉग दिए और मैंने वो तैयार किए। आलोक सर ने डायलॉग का टोनेशन सिखाया। डायलॉग किस तरह से बोलने हैं, ये भी बताया। उन्होंने कहा कि ये डायलॉग बोलते समय मुझे बेबी स्टेप लेने हैं। मैं ये बात समझ नहीं पाया। फिर उन्होंने बेबी स्टेप कर के बताया। मैं इन्हें प्रैक्टिस करते-करते सीख गया। नाटक तैयार हो गया था। हमारा नाटक देखकर आलोक सर हमारी कमियाँ बताना चाहते थे। नाटक शुरू हुआ। नाटक में एक दृश्य आया जहाँ यशोदा मर रही है। उस दृश्य में मैं रो रहा था लेकिन मेरी आँखों में आँसू नहीं थे। नाटक खत्म होने के बाद आलोक सर ने मुझसे पूछा, 'तुम्हारे चेहरे पर हावभाव क्युं नहीं आ रहे हैं?' मैंने आलोक सर से कहा, 'मैं अपने आपको बच्चे के किरदार में नहीं ढाल पा रहा हूँ।' उन्होंने मुझसे कहा, 'तुम पूरी लगन से ये सीन करो, फिर देखो भाव अपने आप उभर आएँगे। अगर फिर भी नहीं हो पाए तो तुम ऐसा समझो कि तुम्हारी अपनी माँ मर रही है और तुम रो रहे हो। फिर देखो कैसी फीलिंग आती है।' आलोक सर ने वो दृश्य मुझसे दुबारा करवाया। मैंने ध्यान रखा और यकीन करने लगा कि मेरी माँ मर रही है। वाकई मेरी आँखों से आँसू टपकने लगे। दृश्य खत्म होने के बाद आलोक सर ने मुझे शाबासी दी और कहा कि मैं इस सूत्र को पूरे नाटक के दौरान पकड़ कर रखूँ। मैंने ऐसा ही किया। पहला परफॉर्मेन्स हमने छारानगर में किया और इसके बाद हैदराबाद और पूना में। नाटक का प्रतिभाव सभी जगह काफी अच्छा रहा। आलोक सर के साथ काम करना मुझे बहोत अच्छा लगा। उनसे प्रोसेनियम भी सीखने को मिला।

थोड़े दिनों बाद मेरा बारहवीं कक्षा का परिणाम आने वाला था। मुझे डर था कि मैं पास नहीं हो पाऊँगा। परिणाम के दिन पापा ने मोबाइल से पता करके बताया कि मैं पास हो गया हूँ। मैं बेहद खुश हुआ। पास होने के बाद मैं सोचने लगा कि कौन से कॉलेज में प्रवेश लूँ। तुषार और जीतू मेरे

अच्छे दोस्त हैं। उन्होंने कहा कि हम हमेशा नाटक करते रहेंगे, इसलिए मैं दाखिला 'गुजरात कॉलेज' में ही लूँ। वहाँ तीन साल का ड्रामा डिग्री कोर्स चलता है। मैंने भी सोचा कि अगर मैं दूसरी जगह पढ़ूँगा तो समाजशास्त्र या मनोविज्ञान में ग्रेज्युएट हो सकूँगा। इससे अच्छा तो मैं ड्रामा ही करूँ, यही मेरा कार्यक्षेत्र है। उसी कॉलेज में हमारी छारा बिरादरी का ही एक लड़का, राजन भी पढ़ता था। वो मेरा दोस्त है। उसकी मुझे सहायता भी मिल जाएगी, ये सोचकर मैंने इसके बारे में दक्षिण सर से बात की। दक्षिण सर ने भी कहा कि मुझे वहीं प्रवेश लेना चाहिए। उन्होंने मुझे इस कोर्स के बारे में समझाया। फिर मैं राजन के पास गया। उसने मुझसे कहा, 'अगर तुम इसमें एडमिशन लेना चाहते हो तो बहोत मेहनत करनी पड़ेगी। देर तक रिहर्सल चलती रहती है। कभी-कभी तो घर जाने को भी नहीं मिलता।' मैं राजन की बात सुनकर समस्या में उलझ गया। पूरी रात सोचता रहा कि क्या करूँ। सुबह होते ही मैंने घरवालों से पूछा। मैंने मम्मी-पापा से पूछा कि ऐसा कॉलेज है और मैं वहाँ प्रवेश लेना चाहता हूँ। पापा तो मेरे पक्ष में थे और मुझे तुरन्त हाँ कह दी। लेकिन मम्मी गुस्सा हो गयी और बरस पड़ी, 'नाटक में इतना समय तो बेकार किया, अब कॉलेज की पढ़ाई में भी नाटक करोगे ?' लेकिन पापा ने मम्मी को समझाया और मुझे इजाज़त मिल गयी।

मैंने तय कर लिया कि मैं इसी कॉलेज में प्रवेश लूँगा। पूछताछ के लिए मैं कॉलेज गया। वहाँ से प्रवेश फॉर्म लाया। वहाँ पर नोटिस लगा हुआ था जिसमें लिखा था कि पहले प्रवेशार्थी को लिखित परीक्षा पास करनी होगी। उसमें सफल होने के बाद एक एकांकि, कविता, माईम और इम्प्रोवाईजेशन करना होगा। मैं घर लौटकर दक्षिण सर के पास गया और सारी बात बतायी। उन्होंने कहा, 'मैं तुम्हें कविता देता हूँ, वो तैयार करना।' उन्होंने मुझे पाश की कविता दी, 'भारत मेरे सम्मान का सबसे महान शब्द'। उन्होंने मेरे दोस्त तुषार को एक पात्रीय अभिनय तैयार करवाने के लिए कहा। तुषार ने मुझे बूधन का किरदार निभाने को कहा। मैंने कहा कि बूधन के डायलॉग मुझे बिलकुल भी याद नहीं हैं। तुषार ने कहा, 'कल शाम सात बजे लायब्रेरी पर

रिहर्सल के लिए मिलना, मैं भी वहीं आ जाऊँगा।' दूसरे दिन से मैंने और तुषार ने प्रयोग शुरू किया। तुषार ने पहले 'बूधन' परफॉर्म किया और मुझे कहा, 'देख, मैं किस तरह से अभिनय करता हूँ।' मैं उसे देखता रहा। फिर मैंने अभिनय किया। तुषार मेरी गलतियाँ मुझे बताता गया। इस तरह दो दिनों बाद रिहर्सल पूरी हुई और मेरा एक पात्रीय अभिनय तैयार हो गया। मैंने फिर माइम के लिए मेरे दोस्त जीतू की सलाह ली। जीतू ने मुझे माइम का विषय दिया, उसके बारे में समझाया और फिर मुझसे तैयार भी करवाया। इस के बाद मैंने जीतू से इम्प्रोवाइजेशन के बारे में बात की। लिखित परीक्षा के बारे में मैंने राजन से पूछा। इस तरह मैंने पूरी तैयारी की।

परीक्षा को एक ही दिन बाकी था और बारिश बहोत हो रही थी। मुझे डर लगने लगा कि कहीं परीक्षा के दिन बारिश न हो। हमारे यहाँ बारिश की वजह से रास्ते में बहोत पानी भर जाता है। आने-जाने के लिए बस और रिक्शा भी नहीं मिलती। जिसका डर था वही हुआ। परीक्षा के दिन बहोत बारिश हुई। बसें और रिक्शा मिलने का सवाल ही नहीं था। मुझे डर लगने लगा कि कहीं परीक्षा में पहोंचने में देरी न हो जाए। ये मेरी ज़िन्दगी में नाटक का पहला इम्तिहान था। मैंने पापा से मुझे कॉलेज तक छोड़ने के लिए कहा। उन दिनों वो थोड़े बीमार रहते थे। हम बाइक पर निकले और कॉलेज पहोंचते-पहोंचते काफी भीग गए। पापा ने मुझे कॉलेज छोड़ा और 'ऑल द बेस्ट' कहा। वो बोले, 'चिंता मत कर, तू पास हो जाएगा।' मैंने कॉलेज में प्रवेश किया। सभी विद्यार्थी आ चुके थे। मैं सबसे पीछे वाली कुर्सी पर बैठ गया। थोड़ी ही देर में परीक्षा शुरू हुई। मेरा तीसरा नंबर था। मेरा नंबर आया और मैं परफॉर्म करने स्टेज पर चढ़ा। सारे परफॉर्मेंस पूरे हो चुके थे। फिर सर ने मुझे नीचे बुलाया और पूछने लगे, 'तुम यहाँ प्रवेश क्युं लेना चाहते हो?' मैंने कहा, 'पिछले आठ सालों से मैं थियेटर कर रहा हूँ और यहाँ थियेटर होता है, इसलिए मैं यहाँ प्रवेश लेना चाहता हूँ।' फिर सर ने कहा, 'दो दिन के बाद सभी पास होनेवालों की लिस्ट यहाँ लगा दी जाएगी। अगर तुम्हारा नाम आ जाए तो समझो पास हो गए।'

घर आकर मैंने पापा को बताया और शाम को लायब्रेरी पर जाकर दक्षिण

सर को मिला। उन्होंने पूछा, 'तेरा परफॉर्मेन्स कैसा रहा?' मैंने कहा, 'बहोत ही अच्छा'। दक्षिण सर ने कहा, 'तुम्हें चिंता करने की कोई ज़रूरत नहीं हैं?' लेकिन दो दिन मैं बहोत चिन्तित रहा। खाना भी नहीं खाते बनता था। दो दिन बाद मैं कॉलेज गया, वहाँ लिस्ट में मेरा नाम था। मैं बहोत खुश हो गया। मैंने तुरन्त पापा को फोन लगाया। सुनकर पापा भी बहोत खुश हुए और कहा,'वेरी गुड'। पास होनेवाले सभी विद्यार्थियों को कहा गया कि दो दिन के बाद फीस के पैसे भरने होंगे। इससे मुझे एक बात याद आती है। जब मैं सातवी कक्षा में पढ़ता था तब पापा एक साधारण पत्रकार थे। उस साल फीस न भर पाने की वजह से मुझे स्कूल से बाहर निकाल दिया गया था और मैं बाहर खड़ा-खड़ा रो रहा था। इस बात से पापा को बहोत दु:ख हुआ था। मैंने बहोत कठिनाइयों से स्कूल की पढ़ाई पूरी की थी। मैं जब कॉलेज से घर लौटा और मेरे सभी दोस्तों को पास होने की खबर दी तो वो सभी बहोत खुश हुए। घर में भी सब खुश थे।

जब मैं कॉलेज में पहले दिन गया तब सर ने सब को बिठाया और अगले तीन बरसों में हमें क्या करना है, ये समझाया। ये भी बताया कि थोड़े दिनों के बाद ही हमारी प्रैक्टिकल परीक्षा होगी। उस दिन फीस भरने की भीड़ उमड़ी। मैंने भी फीस भर दी। नियमित लेक्चर शुरू हो गए। थियेटर में प्रैक्टिकल का अर्थ क्या है, ये तो मैं जानता था, लेकिन नाटक का इतिहास मुझे क्लास में जानने को मिला। फिर हमारी प्रैक्टिकल परीक्षा शुरू हुई। तीसरे साल में पढ़नेवाले विद्यार्थियों को नाटक निर्देशन करना होता है। कुल सोलह नाटकों में काम करना होता है। प्रैक्टिकल परीक्षा की कास्टिंग शुरू हुई। मेरी कास्टिंग सिर्फ़ एक ही नाटक में हुई, वो भी चपरासी के रोल में। बाकी सभी नाटकों में मुझे बैकस्टेज का काम मिला। बैक स्टेज में मुझे नाटक के दौरान सेट ऊपर चढ़ाना, प्रोपर्टी रखना, लाईटिंग, ऐसे काम करने को मिले। लेकिन मुझे ये सभी कार्य करना भी बहोत अच्छा लगा। रिहर्सल के दौरान मुझे रात के दो या तीन बजे घर आने को मिलता। उसी दौरान पापा की नौकरी की बदली दिल्ही हो गई। घर की जवाबदारी मुझ पर आ गई क्युंकि घर में

सबसे बड़ा मैं ही था। लेकिन मैं और क्या करता, थियेटर करने की जो ठान ली थी। थियेटर में सबसे बड़ी बात होती है प्रतिबद्धता। उसके बाद 'बूधन थियेटर' में 'चोली के पीछे क्या है?' का परफॉर्मेन्स करने का तय हुआ। यहाँ भी रिहर्सल शुरू हो चुके थे। इधर कॉलेज की भी रिहर्सल थी। कॉलेज से जब खाना खाने के लिए छुट्टी मिलती तब मैं लायब्रेरी में जाकर 'चोली के पीछे' की रिहर्सल करता। काफी व्यस्त रहता, लेकिन उतना मज़ा भी आता।

'चोली के पीछे क्या है ?' का शो हमने चेन्नई में भी किया। इसके काफी सारे मंचनो के बाद हमने एक नया नाटक शुरू किया, 'एक और बालकनी'। ये फ्राँस के लेखक, जां जेनेट द्वारा लिखित नाटक 'ला बालकन' पर आधारित था। मुझे इसमें 'महादू' का किरदार दिया गया। ये किरदार महाश्वेता देवी की श्रेष्ठ कहानियों में से 'महादू' कहानी से लिया गया था। नाटक में ये किरदार बहोत ही भूखा बताया है। उसकी भूख एक ऐसे सामान्य और पीड़ित व्यक्ति की भूख है, जो इस देश के करोड़ों भूखें लोगों और राजनीति से सताए आम आदमी को प्रस्तुत कर रहा था। इस किरदार के लिए मुझे हर मंचन के एक दिन पहले से भूखा रहना पड़ता। मैं समझता हूँ की मैंने उन करोड़ों भूखे-नंगे लोगों की भूख को आत्मसात कर उसका किरदार बखूबी निभाया। उसके बाद हमने डारीया फो का नाटक 'एक्सीडेन्टल डेथ ऑफ एन एनारकीस्ट' किया, जिसमें मुझे 'सनकी' का मुख्य किरदार दिया गया। डारीयो फो ने उस किरदार को जिस तरह से लिखा है, बिलकुल उसी तरह मैंने उसे आत्मसात करने की कोशिश की। इस नाटक के मंचन के लिए सरकार ने हमें रजामंदी नहीं दी फिर भी हम उसे किए जा रहे हैं।

मेरे सामने सिर्फ़ एक ही ध्येय है, 'बूधन थियेटर' में काम करना और 'बैचलर इन परफॉर्मिंग आर्टस' की डिग्री लेना। मेरे इस रास्ते पर आने से लेकर नाटक का सपना देखने और उस सपने को पूरा करने की मेरी कोशिशों का पूरा श्रेय 'बूधन थियेटर' को जाता है।

v v v

मेरे खोए हुए बचपन को ढूंढ़ रहा हूँ

सुशील इन्द्रेकर

मेरे घर में मेरी माँ और बड़ी बहन हैं। दो बड़े भाई भी थे जो अब इस दुनिया में नहीं रहे। मेरे एक भाई को दिमागी बीमारी थी। वो हमेशा बीमार रहता था। हम अंग्रेजी शराब बेचने का धंधा करते थे। मेरा बड़ा भाई जो कुछ भी उस धंधे में कमाता था, वो सब मेरे दूसरे भाई की दवा और घर पर खर्च हो जाता था। उस समय मैं पाँचवी कक्षा में पढ़ता था। पाँचवी कक्षा से जब मैं धीरे-धीरे दसवी कक्षा में आया उस वक्त मुझे कुछ ऐसे दोस्त मिले जो हमेशा पढ़ाई छोड़कर खेलने-कूदने और यहाँ-वहाँ घूमने में मस्त रहते थे। उनके साथ दोस्ती करने के बाद मैं भी अपनी पढ़ाई भूल गया और उनके साथ वक्त गुजारने यहाँ-वहाँ घूमने लगा। मैं हर रोज़ स्कूल जाने के बहाने अपने दोस्तों के साथ क्रिकेट खेलने या कभी फिल्म देखने चला जाता था। इस तरह पढ़ाई से मेरा ध्यान भटक गया। एक दिन हमारे स्कूल के आचार्य को ये पता चल गया। उन्होंने मेरे बड़े भाई को स्कूल में बुलवाया और मेरी हरकतों के बारे में उन्हें बताया। भैया ने घर आकर माँ से कहा, और माँ और भैया ने मुझे बहोत मारा-पीटा। लेकिन मैंने घूमना-फिरना नहीं छोड़ा और एक दिन मुझे स्कूल से निकाल दिया गया।

स्कूल से निकाल दिए जाने के बाद मैंने अपने बड़े भाई के साथ अंग्रेंजी शराब बेचना शुरू किया। एक साल ये धंधा करने के बाद मैंने फिर से दसवीं कक्षा में दाखिला लिया। मैं पहले ही साल चार विषयों में फेल हो गया। दूसरे साल परीक्षा देने के बाद मैं फिर से दो विषयों में फेल हुआ। इसके बाद तो मेरा पढ़ाई से मन ही हट गया।

एक दिन अचानक शाम के समय दो मुस्लिम लोगों ने मेरे बड़े भाई की

गोली मारकर हत्या कर दी। वो लोग आए तो थे किसी और को मारने, पर गलती से मेरे भाई को मार दिया। मेरे बड़े भाई के मरने के बाद घर की सारी जिम्मेदारियाँ मुझ पर आ गयीं। भैया के चले जाने के बाद हमारी स्थिति भिखारियों जैसी हो गई क्युंकि उनके बाद घर में कमाने वाला कोई नहीं था। मैंने अपनी पढ़ाई छोड़ दी। मुझे कहीं काम नहीं मिलता था और शराब का धंधा मेरी माँ मुझे करने नहीं देती थी। मेरा दूसरा भाई जो दिमागी रूप से बीमार था, उसकी तबीयत दिन-ब-दिन बिगड़ती जा रही थी। मैंने कई बार अपने दोस्तों से पैसे उधार माँगकर उसके लिए दवाएँ खरीदी। पता नहीं कितने दिनों तक मैं और मेरे घरवाले बिना कुछ खाए भूखे घर में बैठे रहते। मेरी माँ मेरे बीमार भाई को अड़ोस-पड़ोस से खाना माँगकर खिलाती थी। घर के ये हालात देखकर मैं एक बार चोरी करने भी गया। लेकिन मैं वहाँ से भी खाली हाथ वापस आया। मैं जब चोरी करने गया तब मेरे दोस्त ने मुझे बैंक के बाहर खड़ा कर दिया और मुझसे कहा, 'इस बैंक में से एक इंसान बैग लेकर बाहर आएगा। तुम्हें उसका पीछा करना है और रास्ते में कुछ बहाना कर उसे रोकना है।' पर मैं उस वक्त बहोत डर गया। मैंने उस इंसान का पीछा तो किया पर उसे रोक नहीं पाया और हमें खाली हाथ वापस आना पड़ा। उसके बाद मैं कभी चोरी की राह पर नहीं चला।

आखिरकार मैंने अपनी माँ को समझाकर शराब बेचने का धंधा शुरू किया। मैंने अपना पूरा ध्यान और पूरी लगन अपने धंधे में लगा दी। इस धंधे में मुझे रात-रात भर जागना पड़ता था, बारिश में भीगना पड़ता था। धंधे के दौरान मैंने पुलीस की भी बहोत मार खायी। लेकिन मैंने कभी हार नहीं मानी। मैंने धंधे में बहोत मेहनत की, इतने पैसे कमाए कि मैंने उन पैसों से एक अच्छा सा घर खरीदा। इससे पहले हम एक छोटे झोपड़े में रहते थे। बारिश के समय हमारा झोपड़ा पानी में डूब जाता था। ऐसे समय में मैं और मेरे घरवाले घर का सामान और बीमार भाई को लेकर यहाँ-वहाँ भटकते रहते। मैं हमेशा भगवान को गाली देता था। सोचता था कि बारिश का मौसम आना ही नहीं चाहिए। तभी से मेरी एक ही इच्छा थी कि मैं बहोत सारे पैसे

कमाकर अपने घरवालों की इन परेशानियों का हल करूँ। मेरी ये इच्छा पूरी हो गयी।

एक बार मैं और मेरा दोस्त, संदीप हमारे घर के पास की सड़क पर खड़े थे। वहाँ एक लायब्रेरी चलती थी। उस लायब्रेरी पर लिखा था 'डी.एन.टी.-रैग छारानगर लायब्रेरी'। ये नाम मैंने पहली बार पढ़ा था। उसका मतलब पता नहीं था। कुछ दिनों बाद संदीप ने मुझसे आकर कहा कि इस लायब्रेरी में बच्चों से कुछ फॉर्म भरवाए जा रहे हैं। जो भी ये फार्म भरेगा उसे डांस सिखाया जाएगा। और ये कला सिखाने वाली हैं मल्लिका साराभाई। उस फॉर्म की फीस थी बीस रुपए। मैंने तुरन्त बीस रुपए संदीप को दिए और कहा कि मुझे भी फॉर्म भरना है। संदीप ने मेरा फॉर्म भरवाया। उसके बाद हम मल्लिका दीदी की अकादमी में गए। उनकी अकादमी का नाम है, 'दर्पण अकादमी'। वहाँ हमारी मुलाकत अर्चन त्रिवेदी से हुई। उनसे हमें ये पता चला कि हमें यहाँ डांस नहीं, नाटक सिखाया जाएगा। ये सुनकर बहोत सारे बच्चे वापस लौट गए पर मैंने सोचा, 'चलो, डांस नहीं तो नाटक ही सही।' वहाँ मैंने पहली बार नाटक करना सीखा। हम सभी रोज़ 'दर्पण अकादमी' जाते और वहाँ रिहर्सल करते। मेरे पहले नाटक का नाम था 'एक ही मिट्टी'। उस नाटक में मैंने एक गाँव के इंसान का अभिनय किया था। इस अनुभव के बाद मैं नाटक से और भी ज्यादा प्रभावित होने लगा। इस तरह मैं लायब्रेरी के साथ संपर्क में आया। लायब्रेरी में मैंने रोक्सी, दक्षिण और संजय के साथ मिलकर बहोत काम भी किया। फिर धीरे-धीरे लायब्रेरी की प्रवृतियाँ बढ़ने लगीं। हमने फिर एक और नाटक तैयार किया। उस नाटक का नाम था 'बूधन'। उस नाटक से 'बूधन थियेटर' की शुरूआत हुई। उस समय 'बूधन थियेटर' में मुझे काम करने का मौका तो नहीं मिला पर मैं कहीं न कहीं थियेटर के साथ जुड़ा रहता। फिर एक बार मुझे 'बूधन' नाटक में काम करने का मौका मिला। इसमें मैंने एक पुलिस हवलदार का अभिनय किया। इसके बाद मैं हमेशा के लिए लायब्रेरी और 'बूधन थियेटर' से जुड़ गया और बहोत सारे नाटक बनाने शुरू किए जैसे, 'पिन्याहरी काले की मौत', 'एनकाउंटर',

'भोमा', 'मुझे मत मारो साब', 'मज़हब हमें सिखाता आपस में बैर रखना', 'भूख', 'चोली के पीछे क्या है?' इत्यादि । मैंने इन सारे नाटकों में काम किया । उस दौरान मेरी मुलाकात महाश्वेता देवी (अम्मा) और गणेश देवी सर से हुई । इसके बाद मुझे 'डी.एन.टी.' का मतलब भी समझ आया । ये भी पता चला कि हम छारा समाज के लोगों को चोर और ' क्रिमिनल' की नज़रों से देखा जाता है । मुझे समझ आया कि हम जो कुछ काम कर रहे हैं वो हमारे माथे पर लगे हुए क्रिमिनल के धब्बे को हटाने के लिए कर रहे हैं ।

'बूधन थियेटर' में काम करने के बाद मेरी ज़िन्दगी में अच्छे परिवर्तन हुए । 'बूधन थियेटर' में काम करने से मुझे अच्छे-बुरे की समझ आयी । मैं पहले हमेशा ये सोचता था कि शराब के धंधे में अपना नाम बहोत आगे ले जाऊँगा जिससे कि हर जगह मेरा नाम फैलेगा । मैंने कभी दूसरे किसी काम के बारे में नहीं सोचा था । मैं हमेशा बड़ा इंसान बनने का सपना देखा करता था । 'बूधन थियेटर' में काम करने से मेरी बड़े-बड़े लोगों से जान-पहचान हुई । मुझे 'बूधन थियेटर' की वजह से एक अच्छी नौकरी भी मिली ।

'बूधन थियेटर' में हमारा बहोत अच्छा दोस्त, आलोक गागडेकर हमारे साथ काम करता था । वो बहोत अच्छा एकटर भी है । उसने कई सालों तक हमारे साथ 'बूधन थियेटर' में काम किया । कुछ सालों बाद उसे दिल्ली के 'नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा' में दाखिला मिल गया और वो वहाँ तीन साल के लिए पढ़ने चला गया । दो साल के बाद उसके एक दोस्त ने बताया कि एक कंपनी को गुजरात में ऐसे लड़कों की ज़रूरत है जो थियेटर से जुड़े हों । आलोक ने रोक्सी से कहा ओर रोक्सी ने मुझे और मेरे दोस्त जीतू को इंटरव्यू के लिए दिल्ली भेजा । हम दोनों दिल्ली गए और वहाँ आलोक और उसके दोस्तों से मिले । उन्होंने हमें इंटरव्यू के बारे में समझाया। मैं बहोत डरा हुआ था क्युंकि मेरी ज़िन्दगी का ये पहला इंटरव्यू था । उस कंम्पनी का नाम था 'बेलसेट एन्टरटेईनमेन्ट प्राइवेट लिमिटेड'। जब हम वहाँ इंटरव्यू देने गए तो हमें पता चला कि पहला नम्बर जीतू का है और दूसरा मेरा । मुझे डर लग रहा था कि जीतू पास हो जाएगा और मेरा इंटरव्यू ही नहीं होगा क्युंकि जीतू

थियेटर में मुझसे ज्यादा अनुभवी था। पर इंटरव्यू में मैं पास हो गया और जीतू फेल। मैंने कभी सोचा भी नहीं था कि मैं कभी नौकरी करूँगा और मुझे इतनी बड़ी कंम्पनी में काम करने का मौका मिलेगा। मुझे जब पता चला कि मेरा सिलेक्शन हो गया है तो मैं बहोत खुश हुआ। मैंने तुरन्त अपने घर फोन किया। माँ से मेरी बात हुई और मैंने उसको बताया कि मैं पास हो गया हूँ। ये सुनकर माँ रोने लगी और कहा, 'मैंने कभी नहीं सोचा था कि मेरा बेटा इतना आगे निकल जाएगा। आज लोग यहाँ पर सिर्फ तुम्हारी ही बातें कर रहे हैं।'

मुझे जिस कम्पनी में काम मिला था वो कम्पनी अलग-अलग कम्पनियों के साथ कॉन्ट्रेक्ट पर काम करती है। हमारी कंम्पनी को 'नोकिया मोबाइल कंपनी' का कॉन्ट्रेक्ट मिला था जिसमें मुझे काम मिला था। काम करने से पहले मैंने दो महीने ट्रेनिंग ली। ट्रेनिंग के वक्त मैं आलोक के साथ ही रहता था। मुझे कंपनी से हर हफ़्ते खाने के खर्च के लिए पाँच सौ रुपए मिलते थे। मैंने पूरे दो महीने ट्रेनिंग ली और इसके बाद गुजरात में काम शुरू किया। हम गुजरात के हर शहर में घूमते थे। हमारे पास एक मोबाइल वैन थी जो बिलकुल मोबाइल शो रूम के आकार की बनायी गयी थी। उस वैन में हम नोकिया मोबाइल के डमी पीस लगाते थे। मेरे साथ दो लड़के और भी रहते थे जो वैन के अंदर खड़े रहते। मैं वैन के बाहर खड़ा माईक से बोल-बोलकर लोगों की भीड़ जमा करता था। इसके बाद लोग वैन के अंदर आते और अंदर खड़े लड़के सभी को मोबाइल के बारे में समझाते। हम लोगों में तोहफ़े भी बाँटते थे, जैसे कि स्कूल बैग, ट्रावेल बैग, टी शर्ट और बॉल पेन। इस तरह हम पूरे दो घंटे रोड शो करते। ये रोड शो हम 'नोकिया' कंपनी के डीलर की दुकान के बाहर करते। इस काम में महिनों तक मैं घर से बाहर रहता। मुझे हमेशा घरवालों की याद सताती थी, मेरे बीमार भाई की चिंता रहती थी। एक बार माँ ने मुझसे कह भी दिया,'छोड़ दो ये नौकरी और घर वापस आ जा,' पर मैं नहीं माना। क्युंकि अगर मैं ये नौकरी छोड़ देता तो मुझे फिर वही शराब का धंधा करना पड़ता। ये नया काम करने के बाद शराब के धंधे से मेरा पूरा

ध्यान हट गया था । मैंने पूरे चार साल नोकिया कंपनी के साथ काम किया और अपने कई दोस्तों को भी इसमें काम दिलवाया । संदीप, विशाल, निखिल, कुणाल, जितेश, ये सभी मेरे साथ काम करते थे । लेकिन एक-दो साल के बाद सभी एक के बाद एक काम छोड़कर चले गए ।

एक बार मैं गुजरात के राजकोट शहर में था । वहाँ माँ का फोन आया। उसने कहा, 'तुम्हारे बीमार भाई की तबीयत ज्यादा खराब हो गई है । तुम जल्दी घर आ जाओ ।' मैं तुरन्त घर पहोंचा और अपनी माँ के साथ भाई को सिविल हॉस्पिटल ले गया । डॉक्टर ने उसे दाखिल किया । नौ दिनों तक उसे हॉस्पिटल में रखा। मैं नौ दिनों तक उसके पास बैठा उसे देखता रहा । भाई पूरे नौ दिनों तक बेहोश ही रहा और आखिर में उसकी मौत हो गई । मुझे लगा जैसे मेरा सब कुछ लुट गया हो । यूँ अचानक ही मेरे दोनों भाई मर गए। मैं अन्दर से बिलकुल टूट चुका था । केवल ये सोचता रहता कि मेरी माँ पर क्या बीत रही होगी । उसके दो जवान बेटे, जिन में से एक तीस साल और दूसरा बाईस साल का था, उनकी आँखों से बहोत दूर चले गए थे । कुछ समय के लिए तो मेरी आँखों से आँसू निकलना भी बंद हो गए ।

इसके एक साल बाद मेरी शादी हो गयी । मेरा शादी करने का बिलकुल भी मन नहीं था। न ही मेरी शादी करने की उम्र थी। फिर भी मेरे घरवालों ने जबरदस्ती मेरी शादी करवा दी । शादी के बाद मेरा स्वभाव बिलकुल बदल गया । घर में लड़ाई-झगड़े शुरू हो गए । मुझे कभी भी अपने ससुराल जाना अच्छा नहीं लगता था जिसके कारण मेरे और ससुरालवालों के बीच हमेशा लड़ाई-झगड़े होते थे । एक दिन मेरा ससुरालवालों से झगड़ा हो गया। उस वक्त मैं घर पर अकेला था । मेरे ससुराल से करीब बीस-पच्चीस लोग मुझे मारने मेरे घर पर आए। सभी के हाथों में लकड़ियाँ थीं। उनका सामना मैंने अकेले किया और उन सबको बहोत मारा । वो लोग आगे भाग रहे थे और मैं काँच की बोतलें बरसाता हुआ उनके पीछे भाग रहा था । हमारा आमने-सामने पुलीस केस भी हुआ और अगले दिन सुबह पुलीस मुझे पकड़कर ले गयी । थाने में मेरे ससुरालवाले भी बैठे थे। उन्होंने मुझे मारने के लिए

पुलीसवालों को पहले से ही पैसे दे दिए थे। थाने ले जाकर पुलीस ने बिना कुछ कहे, बिना कुछ पूछे, मुझे मारना शुरू कर दिया। पु[sस इंस्पेक्टर ने मुझे बहोत मारा। फिर रोक्सी और दक्षिण सर वहाँ आए और उन्होंने पुलिस इंस्पेक्टर से बात की, उन्हें समझाया। उन दोनों ने मुझे वहाँ से छुड़वाया और मुझ पर केस नहीं होने दिया। पुलीस थाने से बाहर निकलकर मैं सोचने लगा, 'अगर मैं 'बूधन थियेटर' में नहीं होता तो आज कौन मेरी मदद करता? 'बूधन थियेटर' की वजह से ही आज मुझ पर केस नहीं हुआ और मैं पुलीस थाने से छुट पाया।' मैं जब भी किसी मुसीबत में फँसता हूँ तो रोक्सी और दक्षिण हमेशा मेरा साथ देते हैं। सबसे अच्छी बात तो ये है कि इस सारे लड़ाई-झगड़े के दौरान मेरी बीवी अपने माँ-बाप का साथे देने के बजाय, मेरा साथ दे रही थी। उसने अपने माँ-बाप के खिलाफ पुलीस में गवाही भी दी। उसके बाद मैंने अपने ससुरालवालों के घर कभी पैर नहीं रखा। न ही उनसे बात की और न ही शायद कभी करूँगा।

जब चार साल बाद मेरा नौकरी का कॉन्ट्रैक्ट पूरा हो गया तो मैं वापस घर आ गया। मैं अब भी 'बूधन थियेटर' से जुड़ा रहा हूँ और मेरा अपने आप से वादा है कि मैं जब तक ज़िन्दा रहूँगा तब तक 'बूधन थियेटर' से जुड़ा रहूँगा, चाहे उसके लिए मुझे कितनी भी मुसीबतों का सामना क्युं न करना पड़े। क्युंकि मैं मानता हूँ कि 'बूधन थियेटर' ने मुझे ज़िन्दगी जीना सिखाया है, अपने लिए भी और दूसरों के लिए भी। 'बूधन थियेटर' की वजह से आज मुझ में इतनी हिम्मत और समझ आयी है कि मैं अपनी ज़िन्दगी का हर फैसला खुद कर सकता हूँ। 'बूधन थियेटर' की वजह से ही मुझे छारा समाज में बहोत मान-सम्मान मिला है।

मेरा आप लोगों से ये वादा है कि आनेवाले कुछ सालों में 'बूधन थियेटर' आसमान की बुलंदियों को छूएगा।

v v v

कहानी मेरी तुम्हारी

पात्र

अंकुर । आलोक । कल्पना

रोक्सी । जयेन्द्र ।

(दृश्य १)

(रुदाली फिल्म का गीत शुरू होता है।)

अंकुर : मेरा जन्म छारानगर के एक सामान्य परिवार में हुआ। मेरे पिता का नाम विजयभाई और माता का नाम अचला देवी है । वो लोग ज्यादा पढ़े लिखे नहीं हैं, लेकिन फिर भी उन्होंने मुझे पढ़ाया-लिखाया और काबिल बनाया । बचपन कि बात है, जब मेरे पिताजी एक प्राइवेट फैक्ट्री में मजदूरी करते थे, एक बार उनका झगड़ा उनके मालिक के साथ हो गया। (अंकुर के पिताजी के फेकट्री का फॉर्म बनता है।)

आलोक : देखो विजय, फिलहाल तो तुम्हें इस तनख्वाह में ही काम करना होगा। तुम्हारी तनख्वाह बढ़ नहीं सकती। अगर तुम्हें काम नहीं करना है तो तुम यहाँ से जा सकते हो ।

अंकुर : मेरे पिताजी की नौकरी चली गई और वो बेकार हो गए । फिर पिताजी घर पर बैठे रहने लगे। जितना पैसा था वो सब खत्म हो गया । फिर पिताजी हर रोज़ काम की तलाश में बाहर जाने लगे । कभी काम मिलता और कभी नहीं मिलता । इसी तरह घर की परेशानियाँ बढ़ने लगीं। घर की हालत बद से बदतर होने लगी । उसी दौरान मेरी माँ की सबसे बड़ी बहन, स्वर्गीय मन्दोदेवी हमारे लिए भगवान बनकर आई । वो रोज़ मराह मस्जीद के बाहर भीख माँगने के लिए जाया करती थी और जब वो भीख माँगकर वापस आती तब मैं उनके पास जाता । (अंकुर कल्पना के पास जाता है) मौसी काई मटन-वटन ल्याया कया न्हेनेका बड्डेका काई भी चालगडा ।

कल्पना : औ तेरा भला होव ऐठ आग काइ नाही मिल्ली रहा ह, यो आज खाल्ली आटा मिल्या ह ल यो । लेइजा।

अंकुर : पण माव्सी माव के घोर भाज्जी बनावणे क लिये भी पैसे कडह ।

कल्पना : ले यो दो रुपिये लेइजा।

अंकुर : मैंने मेरी मौसी से कहा की हमारे पास सब्ज़ी बनाने के लिये भी पैसे

नहीं हैं। तब मेली मौसी ने मुझे दो रुपिये दिए और मैं उस दो रुपये से लाल मिर्च ले आया। उस लाल मिर्च को पानी में मिलाकर हम सबने खाना खाया। लेकिन भगवान को हमारे ये तीखे दिन भी रास नहीं आए और मेरी मौसी बीमार पड़ गई। उन्होंने कुछ दिनों तक भीख माँगने जाना बंद कर दिया। (अंकुर चुपचाप एक कोने में जाकर बैठ जाता है। कल्पना खड़ी होती है।)

कल्पना : मैं अपने माँ-बाप की लाड़ली बेटी हूँ। मेरे तीन भाई हैं जो मुझे अपनी हथेली पे रखते हैं। मेरे जीवन संघर्ष मे मेरी माँ मेरी सबसे बड़ी प्रेरणा रही है। मेरे माँ-बाप ने हमेशा मुझे अपना बेटा ही समझा, कभी बेटी नहीं माना। उन्होंने मुझे हर वो प्यार, हर वो खुशी, हर वो शिक्षा दी जो वो दे सकते थे। मेरे बचपन में हम बड़ी खुशियों भरी ज़िंदगी जीते थे। लेकिन जीवन की शुरूआत कब हुई पता ही नहीं चला। समय का कुछ भी एहसास नहीं हुआ। जब मेरी शादी हुई तब मेरी उम्र सोलह साल की थी और शादी के एक साल के बाद तरुण पैदा हुआ।

रोक्सी : कल्पना, तरुण रो रहा है, डाइलोग बाद में याद करना। (अंकुर खड़ा होता है।)

अंकुर : दीदी, दीदी एक मिनिट... (कैमेरे से फोटो क्लिक करता है।)

कल्पना : तरुण कुछ पाँच-सात महीने का होगा तब रोक्सी और दक्षिण ने लाइब्रेरी की शुरूआत की। मैं लाइब्रेरी की नाट्य प्रवृत्ति में जुड़ने लगी। नाटक तो मैं बचपन में भी किया करती थी। डांस क्लास भी जाया करती थी, लेकिन शादी के बाद ये सब कुछ छोड़ दिया। पढ़ाई भी छोड़ दी। दसवी में फ़ेल होने के बाद मैंने एक बार फिर फॉर्म भरा लेकिन मुझे पता चला की मैं माँ बनने वाली हूँ और मैंने परीक्षा नहीं दी।

रोक्सी : छारानगर एक ऐसी जगह है जहाँ पर कोई रिक्शावाला भी आने को कतराता था। आप से कहता की आप तो किसी अच्छे घर से लग रहे हो, वहाँ क्युं जाना चाहते हो? छारानगर जैसी बदनाम बस्ती में १९९८ में एक नाटक हुआ जिसने न सिर्फ मेरी बल्कि छारानगर के कई युवाओं का जीवन

हमेशा के लिए बदल दिया । (स्टेज के एक कोने मे सभी कलाकार अपना नाम बोलते हैं, आलोक छारा, जयेन्द्र छारा, कल्पना छारा, अंकुर छारा.....)

रोक्सी : ओइ उभ्भे रहो हुं भी ह। रोक्सी छारा । वैसे बूधन थियेटर में मुझे कभी रुची न होती, यदि मैंने समाज और सामाजिक समस्याओं के बारे में सोचने की शिक्षा मेरे पिता स्वर्गीय रसीक गागडेकर से न ली होती। वो स्कूल हो, कॉलेज हो, या फिर हॉस्टेल हो, उन्होंने हमेशा मुझे, मेरे छोटे भाई आलोक, छोटी बहन शेफाली और बड़ी बहन स्वर्गीय रचना को बुराई से दूर रहने की या यूँ कहिए क्रिमिनल एक्टीविटी से दूर रहने की शिक्षा दी। उन्होंने और उनके दास्तों ने मिलकर छारा समाज में फैली बुराई को दूर करने के बहोत प्रयत्न किए। (पीछे सभी कलाकार एक सामाजिक पंचायत का फॉर्म बनाते हैं।)

अंकुर : अरे यो रसीकलाल, क्या गाँडा-गाँडा होई गया क्या ? मकु तो बहणोण-गणोणा गाँडा लागी रहा हा।

जयेन्द्र : अर थारकु काइ खबर पडी रही ह क्या यो रसीक क्या कहण चाहता ह?

आलोक : यो इदा कही रहा ह क पंचायताम नामराष पैसे मती लव।

कल्पना : औ.... पंचायतम पैसे नाही लव तो पंचायत का क्या मतलब ?

रोक्सी : मुद्दा फिर सामाजिक पंचायतो का हो या फिर स्त्री शिक्षण की बात हो, उन्होंने हमेशा छारा समाज में फैली बुराइयों को दूर करने का प्रयास किया। पेशे से तो वो एक एडवॉकेट थे पर वकील होने से पहले वो एक समाज सुधारक थे । कई सालों तक उन्होंने अपनी कमाई से किताबें खरीदकर छारानगर में पढ़नेवाले बच्चों को मुफ़्त में दीं। (रोक्सी, अंकुर, कल्पना और जयेन्द्र को किताबें देता है।)

आलोक : १९९८ में मैने देखा कि एक महीला छारानगर के कुछ युवाओं के साथ शिक्षा संबंधी बातों पर गौर फरमा रही थी। मैंने उनसे पूछा, 'औइ तुम यो क्या करी रहे ह ?'

कल्पना : छारानगर में महाश्वेता देवी आवडी ह।

अंकुर : ओ, र जीन्ह बो रूदाली पीच्चर लीखोडा ह ।

आलोक : बो राज बब्बरावाला क्या ?

सभी : हाँ बोही।

आलोक : यो काज्जी तमक क्या देगडी ?

सभी : यो म्हारनक लाइब्रेरी बनाई देड रही ह ।

आलोक : लाइब्रेरी तमकु क्या देगडी ?

अंकुर : यो घास्लेट अन गुधीया चक क्या देगडीया ?

आलोक : रोज्जा के पचास रुपये कमाइ देती है ।

अंकुरः जा-जा पचास, रुपये कमाइ एठ्ठस निकल चल।

आलोक : सालों पहले मेरे पिता और उनके दोस्तों ने छारानगर में पुस्तकालय बनाने का सपना देखा था लेकिन राजनैतिक गुथ्थियों में ये सपना इस तरह फँस जाता की 'पुस्तक' शब्द ही लुप्त हो जाता। (अंकुर स्टेज के आगे के भाग में आकर बोलने लगता है।)

(दृश्य २)

अंकुर : मेरी मौसी बीमार पड़ गयी और उन्होंने कुछ दिनों तक भीख माँगने जाना बंद कर दिया । फिर से घर की हालत बिगड़ने लगी । तब मेरी माँ मेरे छोटे भाई-बहनों को लेकर दूसरी मौसी के घर पे खाना खाने जाने लगी । मुझे पता था कि माँ खुद भूखी रह जाएगी लेकिन हम सब को पेटभर खाना खिलाएगी । इतने में अचानक मेरे पड़ौसियों ने आकर मुझसे कहा की महावीर कसरतशाला में बहोत बड़ा प्रोग्राम है और वहाँ पर खाने का भी इन्तज़ाम किया गया है ।(पीछे अंकुर के मौसी के घर का फॉम बन जाता है। अंकुर कल्पना के पास जाता है। मैं सीधा माँ के पास गया ओर कहा,)'माँडी, तो यो क्या खआइ रही ह ?'

कल्पना : काइ नाही बेट्टा, चटणी रोट्टी खाइ रही ह।

अंकुर : माडी हुतो महावीर कसरतशाला में जाइ रहा ह अन ओठ्ठ खाणा भी राख्खोडा ह जी माडी हु ओठ्ठ जई राह ।

कल्पना : हाँ बेटा, जा।

अंकुर : जब मैं महावीर कसरतशाला जाने के लिए निकला तब मैंने देखा कि मेरी चड्डी पीछे से फटी हुई है । तो माँ ने उसे सिल दिया। फिर भी मैं थोड़ी बड़ी कमीज पहन के निकला ताकी मेरी पीछे से फटी हुई चड्डी दिखाई न दे। जब मैं महावीर कसरतशाला जाने के लिए घर से बाहर निकला तो मैंने देखा की बाहर तेज धूप है और मेरे पैरों में चप्पल भी नहीं थे । लेकिन क्या करें, महावीर कसरतशाला जाना भी तो ज़रूरी था । तो में निकल पड़ा। जब पैरों में ज्यादा जलन होने लगती तो कहीं छाव देखकर रुक जाता। जब राहत होती तो फिर से चलने लगता । फिर जलन होती तो रुक जाता ओर चलता। इसी तरह टुकड़ों-टुकड़ों में आखिर महावीर कसरतशाला पहोंच ही गया । जब मैं वहाँ पहोंचा तो मैंने देखा (स्टेज पे 'बूधन' नाटक का एक दृश्य मंचन होता है) की कोई टेबल बना हुआ था तो कोई दरवाजा और एक औरत चिल्ला-चिल्लाकर कह रही थी , 'मेरे को छोड़ दो। मेरे को छोड़ दो ।' ये सब कुछ देखकर में बिलकुल डर गया। फिर मैंने मेरे दोस्त अजय से पूछा की ये सब क्या हो रहा है । तो उसने कहा की 'अबे पागल ते कोइ झगडा-वगडा नही हो रहा है, ये तो नाटक हो रहा है।' नाटक ! मैंने मेरे जीवन में नाटक नाम का शब्द कभी नहीं सुना था। ये नाटक उतना ही सच्चा था जितनी हमारे घर की बनाई हुई कच्ची शराब सच्ची होती है। उस दिन मैं उस नाटक में इतना घुल चुका था की मैं अपनी भूख को भी भूल गया क्युंकि उस दिन मेरे जीवन में एक नई भूख का जन्म हुआ था जिसका नाम था नाटक !

जयेन्द्र : अेय रुको कहाँ जार हे हो।

कल्पना : साब, मेरा पति अंदर है। मेरव्पति ने कोई चौरी नहीं की है। हम तो हाथों से खिलौने बनाकर समिती में बेचते हैं। साब, हम तो मजदूर हैं। खेतीहर

हैं। साब... (कल्पना रोते-रोते नीचे गिर पड़ती है।)

अंकुर : की कोइ टेबल बना हुआ था, तो कोई दरवाजा।

कल्पना : उसी दौरान दक्षिण और रोक्सी ने नया नाटक बनाने के लिए सोचा। मैंने मजाक में ही दक्षिण से कहा की मुझे भी नाटक में शामिल होना है पर शायद तुम लोग मुझे शामिल नहीं करोगे। पर दक्षिण ने हाँ कहा और मेरा एक ऑडीशन भी लिया । ऑडीशन हाँ......ऑडीशन।

(सभी कलाकार हँसते हैं ।)

कल्पना : ओय काहेकु हंसी रे...

अंकुर : जा ... न... शमणा नो चांद मने मारी भुख जेवो लागे छे।

जयेन्द्र : चांद इसकु भुखा जेसा लागी रा ह (हँसते हुए सभी कल्पना का मज़ाक उड़ाते हैं।)

कल्पना : (नाराज़ होकर) ओय सारे हंस रे ह हुतो ऑडीशन नाय देव जा। और इस तरह मुझे 'बूधन' की नाटक में अभीनय करने का मौका मिला । दक्षिण ने मुझे बूधन की पत्नी श्यामली का किरदार दिया । उसने मुझे किरदार समझाया । मैंने तो उसे ठीक से समझा ही नहीं था । बस दक्षिण ने जो संवाद दिए थे वो मुझे रोते-रोते बूधन की लाश की ओर जाते समय बोलने थे। मैंने उसी तरह वो दृश्य किया। लेकिन हमारी मंडली में मेरी उम्र से बड़े कई लोग थे जो इस नाटक में अभिनय कर रहे थे जिन में एक तो मेरे मौसा ससुर ही थे। मेरा दृश्य खत्म हुआ तो सब लोग मुझे मूक हो देख रहे थे । मैं डर गई । मुझे लगा मैंने कोई गलती कर दी है । लेकिन मुझे घबराया देख सभी लोगों ने इतनी जोर से तालियाँ बजाई की मेरी आँखों से आँसू निकल आए ।

रोक्सी : समाज, सामाजिक समस्याएँ और छाराओं की मुख्यधारा में अस्विकृति, ये सभी मैं करीब आठ साल का था तब से समझने लगा था। शाहीबाग केन्टोन्मेंट की फीरदोस अमृत हाई स्कूल में मैंने अपनी स्कूल की पढ़ाई की । मेरे पिता ने तो मेरे लिए सैनिक स्कूल का सपना देख रखा था।

पर मैं उसकी एन्ट्रेन्स एक्ज़ाम में कभी पास ही नहीं हो पाया ।

छारा समाज के टेलेन्ट को बाहर लाने के लिए मेरे पिता और उनके दोस्त अलग-अलग प्लेटफॉर्म बनाते थे । ऐसे ही एक प्लेटफॉर्म के तहत मैं एक बार आदर्णीय प्रेम प्रकाशजी से मिला वो सिंधी साहित्य के जाने-माने लेखक हैं। वो 'भोमा' नाटक की रीर्हसल करवा रहे थे।

(स्टेज पर 'भोमा' नाटक के एक सीन का फॉर्म बनता है।)

सभी : भोमा भूख़ा है बाबू, भोमा को चावल दो, भोमा भूखा है बाबू, भोमा को चावल दो ।

जयेन्द्र : भोमा भूखा है । बाबू, भोमा को चावल दो... चावल दो ... चावल दो ...

रोक्सी : (जयेन्द्र के हाथ में स्क्रिप्ट देते हुए) बस, यहीं से बूधन थियेटर की नींव रखी गई और 'बूधन' नाटक का निर्माण हुआ। (ढोल पर चौकड़ी बजती है । जयेन्द्र धीरे से खड़ा होता है ।)

जयेन्द्र : लेकिन भाया यह 'बूधन' नाटक हमारा पहला नाटक नहीं था । जैसे मुझे दक्षिण सर ने बताया था, १९७५ में प्रेम प्रकाशजी जब छारानगर में पहली बार आए थे तो उन्होंने कुछ छारा युवाओं के साथ 'स्पार्टेकस' नाटक का निर्माण किया था जिसका पहला मंचन 'विज़ुअल आर्ट सेन्टर' में हुआ था। और भाया, इस नाटक की बात से मुझे अपने बचपन का किस्सा याद आता है। उन दिनों मेरी उम्र नौ साल की थी। मेरे पिताजी फ्री लान्सर चोर थे। पिताजी ने मुझे अपनी टोली, मतलब अपनी गेंग में शामिल किया था । वो मुझे चोरी करने के लिए गुजरात के एक वोशिंग्टन शहर में ले गये। सौरी, बदला हुआ नाम हैं । मेरे पिताजी और उनकी गेंग ने एक आदमी पर कई दिनों से नज़र रखी हुई थी। उसके सामान और पैसे की चोरी करने के लिए पिताजी ने मुझे भी उस गेंग में शामिल किया था । मुझे हमारे ही समाज की एक औरत के छोटे बेटे का किरदार निभाने को कहा गया था। जो औरत मेरी माँ बनी हुई थी, उसे उस पैसेदार आदमी के साथ नैन मटकाने का ढोंग करना

था। और उसी समय मुझे एक संवाद बोलना था, 'माँ, माँ, मुझे भूख लगी है, पकौड़े और पानी ला दो ना।

सभी कोरस मे : माँ, माँ, मुझे भूख लगी है। पकौड़े और पानी ला दो ना, माँ, माँ मुझे भूख लगी है, पकोड़े ओर पानी ला दो ना।

जयेन्द्र : और मेरी माँ ने उस पैसेदार आदमी से कहा, 'बच्चा भूखा है, जरा जाकर पकौड़े और पानी ला दो ना।' जैसे ही वह इन्सान पकौड़े और पानी लाने गया ..... बस...... खेल खत्म ..... पैसा हजम (सभी कलाकार हँसते हैं।)

रोक्सी : एक तरफ जब छारानगर में लोग अपने अस्तित्व को टिकाए रखने के लिए इस तरह संघर्ष कर रहे थे, वहाँ दूसरी तरफ मेरे पिता और उनके दोस्त छारा समाज में फैली बदीओं को दूर करने के प्रयास कर रहे थे। मुझे याद है १९८० के दशक का वो समय जब मेरे पिता ने छारा समाज की सामाजिक पंचायतों के शोषण के खिलाफ पोस्टर लगवाए थे। (जयेन्द्र, कल्पना, अंकुर पोस्टर लेकर खड़े रहते हैं।) इस आंदोलन की वजह से छारा पंचायतों की रीढ की हड्डी टूट गई। पंचायते आज भी हैं, पर उनमें से शोषण लगभग खत्म हो गया है।

आलोक : मुझे लगता है कि मेरे पिता ने शंकरशेष का नाटक पोस्टर पढ़ा होगा जिस में तथ्य है कि पोस्टर कैसे युग बदलता है। गाँधी से गाँधी तक जितने भी लोग छारानगर में आए उनका कोई ना कोई निजी स्वार्थ हुआ करता था। लेकिन ऐसा कोई अंगत स्वार्थ मुझे इन कला की बात करनेवाले कलावादियों में नज़र नही आया। जैसे की महाश्वेता देवी, देवी सर, सौम्य जोशी ये सब कला की बात करनेवाले कला प्रेमीओं में कोई अंगत स्वार्थ नज़र नही आया। और ऐसे कला से संबंधी कोई अंगत स्वार्थ हो भी तो वह समाज की सेहत के लिए अच्छा होता है। इन कलावादियों ने हमें हमारे इतिहास से वाकिफ़ करवाया, सेटलमेन्ट का वह कड़वा इतिहास... (सेटलमेन्ट के दृश्य का फॉर्म बनता है।)

रोक्सी : यू ऑल मेल मैम्बर्स, गो टू ध फैक्टरीस टू वर्क ए[illegible]

Aho \$g_ë, Jo E\$> H\$\$ µ\$Ÿ&Aho Y {H\$?g e\$> ~r gmaQ\$> \$o_
Yaraå\$g...\$mQ>...\$mQ>...

कल्पना : हम्म... सफेद बंदर...(सेटलमेन्ट का दृश्य पूरा होता है।)

आलोक : १९९८ से पहले समाज के बारे में मेरे लिए सोचना ज़रूरी नहीं था क्युंकि उस वक्त मेरे पास सोचने के लिए बहोत कुछ था। पापा की बिमारी, कर्जा, रोज़ी-रोटी कमाने का चक्कर, इन सारी बातों में मैं हमेशा उलझा हुआ रहता। लेकिन जब मैंने बूधन सबर की परिस्थितिओं से अपनी परिस्थितिओं को जोड़कर दुबारा से सोचना शुरू किया तो अपने आपको बहोत सुलझा हुआ पाया । ('बूधन' नाटक का एक छोटा सा दृश्य परफॉर्म होता है।)

अंकुर : ए..... तेरा ही नाम बूधन साबर है ना ?

आलोक : हा साब ।

रोक्सी : ओए बता चोरी का माल कहाँ छुपाकर रखा है ?

आलोक : मैंने कोई चोरी नहीं की साब, मैं तो हाथों से खिलौने बनाकर समिती में बेचता हूँ।

रोक्सी : तू चाहे जो भी करता हो, चोरी तो तुझे कबूल करनी ही पड़ेगी। आखिर सरकार ने हमें ये डंडा किस लिए दिया है? (आलोक को डंडे से मारते हुए) कबूल कर, कबूल कर, कबूल कर ।

आलोक: हर कोई आदमी एक बार अपने भविष्य की नींव रखता है । मेरी ज़िंदगी में भी वह दिन आया जब मैंने पहली बार 'बूधन' का परर्फोमेन्स किया। बूधन !

अंकुर : नाटक !

जयेन्द्र : परर्फोमेंस !

कल्पना : लाईव आर्ट !

रोक्सी : सेल्फ अेक्सपिरीयंस !

(दृश्य ३)

अंकुर : नाटक। उस दिन से मैं नाटक के बारे में बड़ी गहराई से सोचने लगा और नाटक में मेरी रुची दिन ब दिन बढ़ने लगी । एक दिन मैं स्कूल से लौट रहा था तो मैंने कांच के दरवाजों वाली एक दुकान देखी जो पूरी किताबों से भरी हुई थी। मुझे ऐसा लगा की किसी बड़े से साहब का दफ़्तर होगा । फिर मैंने वहाँ पर कुछ बच्चों को किताबें पढ़ते हुए देखा। उन में मेरा एक दोस्त अजय भी था । (लायब्रेरी का फोर्म बनता है। अंकुर जयेन्द्र के पास जाता है।) मैंने उसे बुलाया, ओय अजय तो अेठ्ठ क्या करी रहा ह?

अजय : ओर अेठ्ठ हम चोपडीया वाचण आवते ह अन हमकु अेठ्ठ नाटक सीखावणम आवता ह ।

अंकुर : नाटक, क्या बात करी रहा? नाटक क्या? नाटक का नाम सुनते ही मेरे रोंगटे खड़े होने लगे क्युंकि मैं नाटक के बारे में बहोत सोचता था नाटक...

अजय : ओय बीस रुपये देइ कर मेम्बर बनण पडँगडा ।

अंकुर : बीस रुपये का नाम सुनते ही मेरे खड़े हुए रोंगटे फिर से बैठ गए और मैं घर की ओर निकल पड़ा । जब मैं दूसरे दिन स्कूल के मैदान में खेल रहा था तो मुझे खेलते हुए अचानक बीस रुपये मिल गए।

सब दोस्त : अरे अंकुर, कुछ खाले, खिलौने लेले ।

अंकुर : नहीं, मैं तो छारानगर लाइब्रेरी का सभ्य बनूँगा । मैं वो बीस रुपये लेकर सीधा छारानगर लाइब्रेरी पहोंचा और वहाँ का सभ्य बन गया । फिर मैं वहाँ रोज़ जाने लगा और वहाँ पर छोटे-छोटे बच्चों की कहानियों की किताबें पढ़ने लगा। वहाँ नाटक भी होता था। एक दिन मैं नाटक के ऑडीशन में पहोंचा । मुझे वहाँ दक्षिण सर मिले। उन्होंने मुझे पूछा की तुम्हें कुछ आता है क्या? तो मैंने कहा की हाँ सर, मुझे एक शायरी आती है ।

मैंने तुझे प्यार किया लैला समझ के,

मैंने तुझे प्यार किया लैला समझ के,

तेरे बाप ने मुझे फिकवा दिया कचरे का थैला समझ के।

कुछ देर तक सब यूं ही घूर-घूरकर देखने लगे। फिर दक्षिण सर ने मुझसे पूछा की कोई नाटक का डायलॉग आता है ? तो मैंने कहा, हाँ सर। तब मैंने राजेश खन्ना की एक फिल्म का डायलॉग बोला जो मेरे पिताजी का बेहद पसंदीदा डायलॉग था :

दिल दे दिमाग दे जिस्म दे जान दे,
दिल दे दिमाग दे जिस्म दे जान दे,
मगर ये पापी पेट न दे

अगर ये पापी पेट दे तो दो वक्त की रोटी का इंतजाम कर के दे। वरना तुझे ये दुनिया बनाने का कोई हक नहीं है।

दक्षिण सर को मेरा ये डायलॉग बहोत पसंद आया। उन्होंने मुझे कहा, कल तुम हमारे साथ उस्मानपुरा, मल्लिका साराभाई के वहाँ आ सकते हो ? दूसरे दिन जब मैं उस्मानपुरा जाने के लिए निकला तो मैंने सोचा कि उस्मानपुरा में मल्लिका साराभाई का कोई छोटा-मोटा घर होगा। पर जब मैं वहाँ पहोंचा तो मैंने वहाँ बड़ा आलिशान सा मकान और एक बड़ा सा स्टेज देखा। वहाँ कुत्ते भी बहोत थे। वो भी अलग-अलग चेहरों वाले...। हड हट्ट, हड हट्ट, हड हट्ट...। ओ दीदी काट्टी खाया ...

वहाँ मेरी पहली मुलाकात अर्चन त्रिवेदी सर से हुई। वो मेरे जीवन के पहले नाटक गुरु बने। उन्होंने हमें गांधीजी के मूल्यों पर आधारित पाँच नाटक सिखाए। उसी दौरान दर्पना नाट्य विभाग के प्रमुख, स्वर्गीय कैलाश पंडया, जिन्हें सब दादा कहते थे, उन्होंने मुझे बुलाया और कहा, मैं तुम्हें नया नाटक सिखाऊँ तो क्या तुम करोगे ? मैंने उन्हें हाँ कहा तो फिर उन्होंने मुझे 'भटुरिया' नाम का नाटक सिखाया। मैंने उस नाटक के लिए बहोत महेनत की। बहोत रिर्हसल की पर जब इसकी शो करने की बारी आई तब...(सभी कलाकार अंकुर को विंग्स मे से स्टेज की और धक्का देते हैं।)

सब कलाकार : और अंकुर जाव कुन नाटक चालु होइ गया अन तेरा डायलॉग

आइ गया।

अंकुर : नाहि (डरते हुए स्टेज पर आता है) तब मैं अपने नाटक के सारे डायलॉग भूल गया, मैं बहोत डर गया था । मैं रोने लगा। मुझे मेरे दोस्तों ने समझाया कि अंकुर, इस बार नाटक नहीं कर सके तो क्या हुआ, अगली बार कर लेना । जब यही नाटक छारानगर में करने की बारी आई तब ('भटुरिया' नाटक का एक दृश्य परर्फोम होता है ।)

आम जउ तेम जउ आम जउ तेम जउ। तमारे भगवान पासे नही आउ तो कइ तो कइ नहीं पण मारे तो भगवान पासे जउ छे । आम जउ तेम जउ आम जउ तेम जउ... उस दिन मेरे माता पिता ने मुझे पहली बार स्टेज पर नाटक करते हुए देखा । वो बहोत खुश हुए थे । उस दिन मुझे मेरे जीवन में एक उपनाम मिला, 'भटुरिया'।

कल्पना : अब मैं शायद श्यामली के किरदार को थोड़ा-थोड़ा समझने लगी थी। लेकिन 'बूधन' के शो के ठीक आठ दिन पहले मेरे ससुर को जेल हो गई। सारा घर परिवार अस्त व्यस्त हो गया । ऐसे में मुझे ओर रोक्सी को नाटक में अभिनय करना था । हमारा मन तो नहीं लगता था फिर भी अपना दुःख भुलाते हुए हमने रीहर्सल जारी रखा । लेकिन उस वक्त दक्षिण को मेरे अभिनय में कुछ कमी नज़र आई । उसने मुझे रुदाली फिल्म का एक दृश्य दिखाया । मैंने वो दृश्य देखा। मैंने बड़ी महेनत की और शनेचरी के पात्र से प्रेरित होकर मैंने श्यामली के पात्र का मंचन किया। उसके बाद हमने कई जगह 'बूधन' का शो किया। आज तक 'बूधन' कितनी बार परर्फोम हुआ है ये अब गिनना भी मुश्किल है। हम बस नाटक करते गए। नाटक नाटक नाटक...और इधर मेरे घर के हालात बिगड़ते गए । घर में काफी आर्थिक कठानाइयाँ आई। ससुरजी के जेल जाने के बाद घर की सारी जिम्मेदारी मेरी सास पर आ गई। रोक्सी की पढ़ाई चल रही थी इसलिए सब कुछ मेरी सास को ही करना पड़ता था । घर शराब की भट्टी से चलता भी था और महकता भी था । मेरी सास सारा दिन भट्टी निकालती और मैं जगह-जगह शराब देने जाया करती । फिर सुबह सब्ज़ी और शाम को पकौड़े। मैं दिन भर शराब, सब्ज़ी और पकौड़े के बीच फसी

रहती । लेकिन इस दौरान नाटक तो जारी ही था ।

जयेन्द्र : भावज रीहर्सल चालु होइ गा। दक्षिण उपर बुलाइ रा।

कल्पना : देखा, ऊपर रीहर्सल चल रहा है। दक्षिण मुझे बुला रहा है । मैं दिन भर के सारे काम खत्म करके रात को रीहर्सल के लिये जाया करती। ('एन्काऊन्टर' नाटक का फॉर्म बनता है।)

रोक्सी : ऐ तन्नु, माँ बाप ने तो सारी ज़िंदगी भीख माँगी और वही धंधा हमको सिखाया।

कल्पना : और जब इस धंधे से भी पेट नहीं भरा तो ये हाथ से भट्टी का धंधा शुरू करना पड़ा ।

सभी : अंकुर, तेरा डायलॉग, तेरा डायलॉग औरा ...

अंकुर : हा माँ, माँ मुझे खाना दो, मुझे ...

कल्पना : हमारे पास कोई ठीक-ठाक जगह नहीं थी इसलिए हम छत पर रीहर्सल करते थे । धूप छांव, बारिश, हर मौसम का लुत्फ लेते हुए हमने नाटक जारी रखा । लेकिन समय के साथ लगभग सभी कलाकारों की पढ़ाई खत्म हो गई। जिन्हें नौकरी मिलती गई वो थीयेटर छोड़ते गये। लेकिन हमारे साथ नये-नये बच्चे जुड़ने लगे। नाटक जारी रहा । अब मेरे ससुरजी जेल से रिहा हो गए थे। मुझे लगा की अब मैं नाटक नहीं कर पाऊँगी। लेकिन मेरी सोच गलत साबित हुई । ससुरजी ने मुझे मना नहीं किया । बल्कि वो तो मुझे बिठाकर समझाते किस तरह संवाद पर ध्यान देना, दर्दभरी आवाज़ निकालना, रोने का अभीनय करना। शुरू-शुरू में तो सभी ने मेरा बहोत साथ दिया । सास, ससुर, रोक्सी। लेकिन जब तरुण थोड़ा बड़ा होने लगा और उसे छोड़कर मैं नाटक करने जाया करती तो घरवालों का विरोध शुरू हो गया । विरोध क्युं न करते ? जब तरुण मेरी गोद में था तब भी मैं नाटक करती थी । जब ससुरजी जेल में थे तब भी नाटक करती थी । जब क्रान्ति मेरी गोद में थी तब भी मैं नाटक किया करती और आज तरुण दसवीं क्लास में है तो अब भी मैं

नाटक कर रही हूँ। शायद इसी वजह से घरवालों ने मुझे नाटक करने से मना कर दिया। लेकिन रोक्सी ने मेरा बड़ा साथ दिया। (उसी समय रोक्सी कल्पना के हाथों में स्क्रीप्ट देता है।) उसने मुझे नाटक नहीं छोड़ने दिया और घरवालों के विरोध के बावजूद मैंने नाटक जारी रखा। फिर ससुरजी की बिमारियाँ शुरू हुईं। बिमार तो वो पहले से ही थे। उन्हें डायबीटीस थी जिसकी वजह से उनकी कीडनियों ने काम करना बंद कर दिया था। वो वकालात करने कोर्ट भी नहीं जा सकते थे। कई बार जब उनके इलाज के लिए पैसे नहीं होते तो हम लोग ससुरजी के एडवोकेट ग्रूप से चंदा इकठ्ठा करते और उनका इलाज करवाते। (आलोक और अंकुर जयेन्द्र को घसीटते-मारते स्टेज पर लाते हैं।)

जयेन्द्र : पिताजी शराब पीते रहे। जुआ भी खेलते रहे और चोरी भी करते रहे। इन्हीं सब के बीच वो मुझे और मेरे छोटे भाई-बहन को पढ़ाते रहे और समाज में चल रही बूधन नाट्यगत प्रवृत्ति मे मुझे प्रोत्साहित भी करते रहे। मैं नहीं जानता कि पिताजी मुझे क्या बनाना चाहते थे। लेकिन मैं यह ज़रूर जानता था कि उन्हें आत्मसम्मान की भूख थी और उनकी वह भूख मेरे किए हुए अभिनय की तारीफ से संतुष्ट होती थी। वह सबसे ज्यादा खुश तब होते थे जब कोई बाहर के समाज से आया व्यक्ति हमारे साथ हमारे छोटे से घर में कुछ दिन बिताता। एक आदमी जो पुलीस की मार सहता है,उसे चोर शब्द से नवाजा जाता है, पब्लिक उसे नंगा कर के रोड पर दौड़ाती है। पुलीस की लाठियाँ उसके पैरों के तलियों को मार-मारकर पत्थर जैसा बना देती है, जो होश सँभालते ही यह सोचता है की भले ही मैं चोर बना... पर मेरे बच्चे ... मेरे बच्चे कोई बड़े अफसर बनेंगे ओर लोग उन्हें सलाम करेंगे। मेरे पिताजी ने समाज की उस परंपरा को तोड़ना चाहा जिस में माना जाता है कि डॉक्टर का बेटा डॉक्टर, लुहार का बेटा लुहार और चोर का बेटा चोर ...

रोक्सी : १९९८ में पहला डी.एन.टी. कन्वेन्शन हुआ और 'बूधन' नाटक का पहला परफोर्मेन्स हुआ। यह पहली बार था जब लोगों ने यह जानने की कोशिश की कि आखिर छाराओं की समस्या क्या है। क्या वे सुधरना नहीं चाहते या उन्हें सुधरने का मौका नहीं मिला? मीडीया ने पहली बार छाराओं

की समस्याओं पर ध्यान दिया। (कल्पना माईक लेकर रोक्सी, अंकुर और जयेन्द्र का इन्टरव्यु लेती है।)

रोक्सी : देखिए, किसी भी समाज के विकास के लिए उसे बाहरी समाज का सपोर्ट मिलना बहोत ज़रूरी है। छाराओं के साथ आज तक ऐसा नहीं हुआ है।

अंकुर : जब कोई छारा समाज का युवक या युवती नौकरी के लिए कोई ऑफिस में जाता है तो उसे छारा समझकर ऑफिस से धक्के मारकर बाहर निकाल दिया जाता है । और उसे जॉब नहीं मिलती।

जयेन्द्र : देखिए, मैं तो सिर्फ इतना ही कहना चाहूँगा कि सभी छारा एक जैसे नहीं होते, जिन्हें मिला मौका उन्होंने मारा चौका। इस मूवमेन्ट को शुरूआती सपोर्ट देने के लिए मेरे पापा ने काफी मदद की थी पर जब वो नाटक परर्फोम हो रहा था तब वो पोरबंदर के जेल में पासा की सज़ा काट रहे थे। किसी एक मेगेज़ीन में ऐन्टी-पुलीस स्टेटमेन्ट देने की वज़ह से पुलीस ने उन्हें पासा के तहत अरेस्ट कर लिया था । मैं और शेफाली अभी कॉलेज में पढ़ रहे थे, जबकि आलोक स्कूल में था। उस वक्त मम्मी का एक्सिडेन्ट हो गया था और उनका ऑपरेशन करवाना ज़रूरी था। उस वक्त मुझे पहली बार यह एहसास हुआ की घर में सबसे बड़ा होने के नाते अब घर की सारी जिम्मेदारियाँ मुझ पर हैं । मेरे और कल्पना के सामने उस वक्त दो रास्ते थे– या तो क्रिमिनल एक्टीवीटी कर के आसानी से पैसे कमाए जाएँ या फिर कोई धंधा करें। मैने दूसरा रास्ता चुना। मैं सुबह पाँच बजे उठता, दूध लेने जाता और दूध की होम डिलीवरी करता । माफ कीजेएगा, मैं दूध उन्हीं पोलीथीन की थैलियों में भरकर बेचता जिस में लोग शराब बनाकर बेचा करते हैं । दूध बेचते वक्त के दो किस्से मुझे अच्छी तरह से याद हैं । पहले तो कोई व्यापारी किसी छारा के साथ धंधा नहीं करना चाहता और अगर मान भी ले तो पैसे के बगैर धंधा नहीं करता।

आलोक : (फोन पर बात करते हुए) हाँ माँ, छा कइदो इकडो छारो आइदो उनके खीर खपैआ हा ... हा मा कहींदो छारो है...छारो है। हा भैयाँ पैसे तो

पहले देने पड़ेंगे। उस वक्त ऑपरेशन पचास-पचास चल रहा था जिसके तहत कोई भी पुलीसवाले किसी भी छारा के घर में घुसकर अंदर तोड़-फोड़ करते और सारे घर पर पुलीस केस करते। इत्तफाक से जब वो मेरे घर में घुसे तो उन्हें वही पोलीथीन थैलियाँ मिली जिसमें मैं दूध बेचा करता था। मेरी मम्मी ने बहोत मिन्नतें की, पर उन्होंने उसकी एक न सुनी। मैं दूर से ही मम्मी को देखता रहा, वो लोग उसे गाड़ी में बिठा रहे थे। मैं बहोत डर गया था। उनके हाथ जो आता वो उन लोगों पर पुलीस केस कर रहे थे। मैं उस वक्त बी.ए. के पहले वर्ष में पढ़ाई कर रहा था। पढ़ाई से तो जैसे कोई नाता ही नहीं रहा था। किताबों से कोई रिश्ता नहीं बचा था।

वैसे उस वक्त शराब की एक बोतल बेचकर कुछ सौ-दो सौ रुपये कमाना कोई बड़ी बात नहीं थी। मैं ओर कल्पना दूध-सब्ज़ी बेचकर दिन के कुछ सौ रुपये कमा लेते थे और तरुण के लिए दूध हम फ्री में निकाल लेते थे। पर घर के हालात में कुछ खास फ़र्क नहीं पड़ रहा था। पापा की बिमारियाँ, मम्मी का ऑपरेशन और व्याजवालों का व्याज। इन सभी के लिए काफी खर्चा होता था। आलोक, जो कि अपनी कॉलेज का फेवरेट था, उसने मेरे घर के पास जुआरियों को शराब का पेग बनाकर पिलाने की नौकरी की। इसके उसे कुछ सौ रुपए मिल जाते थे। (जुए के अड्डे का फोर्म बनता है।)

जयेन्द्र : आगुल, आगुल, आगुल, चल ये माल भी गुल है।

अंकुर : ये माल भी गुल है।

जयेन्द्र : तो फेक अखियाँ

अंकुर : हाश!

जयेन्द्र : अरे रसीकावाला, एक पेग तो बनाई ल्या। (आलोक जयेन्द्र को ग्लास मे शराब भरकर देता है।)

आलोक : हजारों युवाने डिग्री लइ नोकरी नी लाइन मा उभा छे।

रोक्सी : पापा के जेल से रिहा होने के बाद हमें लगा कि अब सब कुछ ठीक

हो जाएगा । पर ऐसा कुछ नहीं हुआ । जब पापा वापस आए तो साथ में बिमारियाँ लेकर आए । एक रात उनकी तबीयत अचानक खराब हो गई। उनका पेट फूल गया । डॉक्टर ने कहा डॉक्टर ने कहा कि उनकी दोनों कीडनी फेल हो गई हैं । उन्हें जिंदा रखना हो तो डायलीलीस पर रखना पड़ेगा । डायलीलीस एक ऐसी प्रक्रिया है जिस में आदमी का खून उसके शरीर से निकाल कर एक मशीन में साफ करने के लिए डाला जाता है। ये प्रक्रिया देखने की मेरी हिम्मत कभी नहीं हुई।

आलोक : लेकिन मेरी हो गयी ! उस वक्त मेरे साथ जाते थे सार्त्रे, मोहन राकेश वगेरे । पापा की तबीयत खराब हो गई तो लोगों ने कहा कि बेटी की शादी तो कर दो। मेरे पिता ने परिवार के सभी लोगों को बुलाया और...

रोक्सी : उन्होंने लिट्ररी हाथ फैलाए।

आलोक : देखो भाई, मैं आज तक थार टाबर खातर घणा करोडा ह। अब मकु तकलीफ हे मेरे बेटिया का ब्याह हु, था रस जो बन्नी पन्ड बो तम मकु मदद करीयो। अन्न रही बात दहेजा की तो बो तो हु दंगडा नाही, में जो मेरीयाँ बेटीयाँ कु भणतर दवडा हु, बोही दहेज ह ।

रोक्सी : आज भी वो एज्युकेशन मेरी बहन को काम आ रहा है ।

कल्पना : शेफाली की शादी पर हमने करीब दो लाख रुपए उधार लिए। सोचा कि पापा के मरने के बाद बीमे की रकम से चुका देंगे ।

(दृश्य ४)

अंकुर : एक रात को जब मैं सोया हुआ था तो किसी ने मेरे घर का दरवाजा खटखटाया। माँ ने दरवाजा खोला । सामने विवेक खड़ा था। विवेक ने मुझे कहा, अंकुर, तुझे दक्षिण सर बुला रहे हैं । मैं विवेक के साथ दक्षिण सर के छत पर पहोंचा। तो दक्षिण सर ने मुझे कहा कि तुझे 'बूधन' नाटक में उसके बच्चे बुधेव का रोल करना है, जो सिर्फ इतना बोलता है, 'बाबा उठो । बाबा उठो।' ये नाटक हम भोपाल में प्रस्तुत करने वाले थे । उस समय के भोपाल

के मुख्यमंत्री, श्री दिगविजय सिंह हमारा नाटक देखने के लिए आने वाले थे। किसी कारणसर वो हमारा नाटक देखने के लिए आ नहीं पाए । लेकिन फिर भी मैंने उसी इन्वॉल्वमेन्ट के साथ बोला, 'बाबा उठो, बाबा उठो।' इसी तरह मैं नाटक करता गया और नाटक के किरदार के साथ-साथ मेरी उम्र भी बढ़ने लगी। इधर घर की परेशानियों की वज़ह से मेरी माँ ने छारानगर में कपड़े बेचने का धंधा...(अंकुर, कल्पना के पास जाता है।)

अंकुर : माडी बो बरीन आज तीस रपीयेज कता बाकीयाके पैसे परसु देंगडी।

कल्पना : बो बोरीन आज पूरे पैसे नाही दिएं, चर चालंगडा ।

अंकुर : हाव माडी, उसी दौरान मेरी माँ का झगड़ा मेरी चाची के साथ हो गया और वो हमें छोडकर छारानगर से सुभाषनगर रहने के लिए चली गयी। मैं रोज छारानगर से शराब लेकर सुभाषनगर में बेचने लगा । इससे मेरे पिता को ये डर लगने लगा की हमारा भविष्य बरबाद हो जाएगा । तो मेरे पिताजी हमें सुभाषनगर से छारानगर वापस लेकर आ गए । इससे मेरी स्कूल का पूरा एक साल बिगड़ गया। फिर मैं घर पे बैठा परेशान होने लगा । मैंने फिर से लायब्रेरी जाना शुरू किया। किताबे पढ़ने लगा और नाटक करने लगा। इसी तरह मैं नाटक के क्षेत्र में आगे बढ़ने लगा। हमारे नाट्य ग्रूप की एक सदस्य कल्पना दीदी थी। वैसे थी वो तो मेरी बड़ी बहन की तरह लेकिन माँ की तरह मेरा ख्याल रखती । उन्हीं की बदौलत मुझे दर्पना अकादमी में नाटक का एक प्रोजेक्ट मिला जिससे मुझे पूरे दो हज़ार रुपऐ मिले। भाई साहब, मैं वही बच्चा हूँ जिसने दो रुपये की लाल मिर्च पानी में मिलाकर खाई थी। मैंने वो पैसे मेरे पिताजी को दे दिए क्युंकि वो मेरे जीवन की पहली कमाई थी । उसके बाद बूधन थियेटर के एक दूसरे सदस्य आलोक भैया, जो राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय से स्नातक होकर बूधन थियेटर में आए, उन्होंने एक नया नाटक बनाया जो महाश्वेता देवी की नॉवेल 'ध ब्रेस्ट गीवर' कहानी पर आधारित था । इस नाटक का नाम था, 'चोली के पीछे क्या है?' इस नाटक में भी मुझे एक छोटे बच्चे का किरदार मिला था । मैंने इस नाटक के लिए पूरे दो महीने

जी जान से मेहनत की। एक दिन मैं सिर्फ एक घंटा लेट पहोंचा तो आलोक ने मुझे नाटक से निकाल दिया । मैंने बहोत मिन्नतें की कि मुझे इस नाटक सें मत निकालो, मैं नाटक के बगैर मर जाऊँगा। मैं बहोत रोया। पर उन्होनें मेरी एक नहीं सुनी । तब मुझे ट्रेन्ड एक्टरों से बहोत नफ़रत होने लगी। पर फिर भी मैंने हार नहीं मानी और उस नाटक में बैक स्टेज में काम करने लगा। जब यही नाटक दर्पना अकादमी में करने की बारी आयी तब आलोक भैया ने मुझे नाटक में वापिस ले लिया। मैं उस दिन बहोत खुश हुआ था ।

कल्पना : कीतोड जाइरा ह?

अंकुर : कहाँ पे जा रहे हो ?

जयेन्द्र : क्यो जार है हो ?

रोक्सी : कीतोडास आइ रहा ह ?

अंकुर : कहाँ से आर हे हो ?

आलोक : तो कब आओगे ?

कल्पना : मुँडी

अंकुर : सीर

जयेन्द्र : गोड्डे

अंकुर : घुटने

रोक्सी : काँगडी

अंकुर : कमर

आलोक : टांग्गा

अंकुर : पैर

उसके बाद हमने बूधन थियेटर में एक नया नाटक बनाया जिसका नाम था 'मुझे मत मारो साब'। जब इस नाटक का मैं पहला परर्फोमेंस करने जा रहा

था तब मेरी मौसी का लड़का छत से गिर के मर गया। सभी घरवाले उसकी शोक सभा में बैठे थे पर मैं नाटक करने के लिए गया क्युंकि ध शो मस्ट गो ऑन। उसके तीन दिन के बाद मेरी मौसी भी मर गयी क्युंकि वो अपने बेटे की मौत का सदमा सहन नहीं कर पाई। (अंकुर, उसकी मौसी की भिक्षा वाली पोटली उठाता है और रोने लगता है।) मावसी काइ मटन-वटन ल्याया क्यां न्हेने का बढ्ढे का काईभी चालगडा, मावसी मावक घोर भाज्जी बनावण भी पैसा कजह, औ मावसी तो मीकु दो रपिये दे जी हु लाल मोचा लेइं आव, हम सारे उन मीर्ची पाणीयाम मीलाइ कर खांगडे, ओ मावसी तो म्हरकु छोट्टी कर काहीं कु चल्ली गइ अब म्हरकु कोण मदद करगंडा मावसी तो कड चल्ली गयी, मावसी मावसी मावसी... (अंकुर रोते-रोते नीचे गिर पड़ता है।)

कल्पना : अब तरुण थोड़ा बड़ा हो गया है और समझदार भी। वो नाटक में भी शामिल हो गया है। तरुण कुछ सात साल का होगा तब हमने दूसरे बच्चे के बारे में सोचा। उसी वक्त दक्षिण ने 'भोमा' नाटक बनाने का एलान किया। मुझे भी 'भोमा' नाटक में लिया गया। लेकिन दक्षिण को किसी वजह से जेल हो गई। उसे तडीपार कर दिया गया।

रोक्सी : छारागनर में किसी दो लोगों के बीच झगड़ा हुआ और दक्षिण का गलत तरीके से नाम लिख दिया गया जिस के तहत दक्षिण को जेल हो गई। बड़ी मेहनत से करीब बाइस दिनों के बाद दक्षिण की बेल हुई। कंडीश्नल बेल जिस के तहत दक्षिण छारानगर एरीया में नहीं आ सकता था। उसे तडीपार कर दिया गया था। लेकिन हमारा नाटक दक्षिण के पास जा सकता था रिहर्सल के लिए।

कल्पना : और इस तरह हमारा 'भोमा' नाटक तैयार हुआ जिसका पहला मंचन धीरुभाई अंबानी इंस्टीट्यूट ऑफ इन्फॉर्मेशन टेक्नोलॉजी के ओपन थियेटर में हुआ। पर पता नहीं कैसे, शो के दौरान ही भारी बारिश शुरू हुई। सारा फर्श गीला हो गया। मुझे छटा महीना चल रहा था और मेरी बहोत सी मूवमेन्ट भग-दौड़ वाली थी । मैं घबरा गई। गिरते सँभलते और भगवान से

प्रार्थना करते हमने 'भोमा' का पहला मंचन खत्म किया । नाटक पूरा होते ही मेरा मन कुछ व्याकुल हो उठा। मैंने अपने आपसे सवाल किया की क्युं मैं पागल हूँ। क्युं मैं इतनी पागल हूँ नाटक के लिए कि मैंने अपने होनेवाले बच्चे की भी परवाह नहीं की ? अपने आप से पूछे उन सवालों का जवाब मैं आज भी नहीं दे पाती हूँ। खैर ११ दिसंबर २००३ के रोज़ मैं एक बार फिर माँ बनी। मेरी बेटी महज़ बीस दिनों कि होगी कि मैं फिर से नाटक करने चली गई। मुंबई वर्ल्ड सोशयल फोरम में। लेकिन अब तक हमने अपनी बेटी का नाम नहीं रखा था। हमने देवी सर से कहा...

रोक्सी : देवी सर, हमने हमारी बेटी का नाम नहीं रखा है। आपको नाम रखना होगा प्लीज़।

कल्पना : देवीसर ने माहौल के चारों ओर देखा ओर अपनी चुप्पी तोड़ी। कहा, 'तुम लोग नाटक में क्रांति...क्रांति बहोत माँगते हो तो आज से इसका नाम क्रांति...

रोक्सी : उस वक्त मल्लिका साराभाई ने तारा चेनल शूरू करने की घोषणा की। मैं उस समय बी.ए. के तीसरे वर्ष में पढ़ाई कर रहा था। हर महीने की पहली तारीख को मुझे सैलेरी के तौर पर छ हज़ार रुपए मिलते और हर महिने की सातवी तारीख को हमें दस हज़ार रुपए व्याज भरना होता था। बाकी के पैसे मम्मी और कल्पना मैनेज कर लेते थे। लेकिन तारा चेनल की नौकरी ज़्यादा दिनों तक नहीं चली। तारा चैनल को एक साल होता उससे पहले ही चैनल बंद हो गई। मेरे पास कोई नौकरी नहीं थी। व्याजवालों ने जीना हराम कर दिया था। एक रात मैंने देखा की बचपन से फाइटर रहे मेरे पिता छोटे बच्चे की तरह रो रहे थे। व्याजखोरों के प्रेशर से घर की हालत बद से बदतर होती गयी। डायालिसीस न होने की वजह से शरीर में हो रही असह्य पीड़ा से वो टूट रहे थे। बस, मैं पूरी तरह से फ्रस्ट्रेट हो गया। कुछ भी समझे सोचे बगैर मैं मेरे एक दोस्त के पास चला गया। ओय उठतो जरा जरूरी काम ह।

जयेन्द्र : क्या हुआ रोक्सी आधिया रात्ती तो एठ्ठ ?

रोक्सी : अर चकु क्या भताव मीकु आज पैसे की घणीज जरूरत ह, तो मीकु काल स तेर साथअथई चोरी करनक खातर लेईजा ।

जयेन्द्र : ओर रोक्सी तो क्या गांड्डा होई का क्यां आधिया रात्ती मेरी मस्ती करी रहा ह क्यां ?

रोक्सी : ओर नाहीयार मकु पैसे की साच्चज घणीज जरूरत हप्पे की हालत मरने जेस्सी होई गवडी ह। पप्पे की दवा ल्यावण खातर म्हार घोर पैसे कडह। तो मीकु काल तेर साथ्थी चोरी करन क खातर लेइजा ।

जायेन्द्र : रोक्सी अब तो घर जा अन हु तर साथ्थी काल सवेर बात करंगडा।

रोक्सी : उस रात उस दोस्त ने मुझे जैसे-तैसे कर के अपने घर से निकाला। दूसरे दिन वो दोस्त मेरे घर पे आया और मुझे कुछ पैसे दिए। उसने कहा की अभी के लिए तू पापा का इलाज करवा ले । आज के बाद कभी चोरी करने का नाम भी अपनी ज़बान पे मत लाना । मैं जब तक जिंदा हूँ तब तक उस दोस्त का एहसान मानता रहूँगा । पर पैसों की कमी के बीच पापा कब तक जिंदा रहते ? २ ऑक्टोबर २००१ की शनिवार का वो दिन। मम्मी पापा को डायालिसीस के लिए ले गई ।

थोड़ी देर में फोन आता है। आप के पापा की तबीयत खराब है। उसे हॉस्पीटल ले आओ । जब मैं वहाँ पर पहोंचा तो देखा कि पापा कोमा में सरक गए थे और मम्मी एक से दूसरे डॉक्टर के पास धक्का खा रही थी । डॉक्टर ने कहा कि उन्हें वेन्टीलेटर पर रखना पड़ेगा जिस में काफी खर्च आएगा । मैं पैसों का इंतजाम करने का सोच ही रहा था कि मम्मी ने कहा कि पैसे होते तो पापा की ये हालत ही नहीं होती। पर क्या करें उन्हें मरने तो नहीं दे सकते थे । डॉक्टर ने दवाई की एक चीठ्ठी थमा दी। मैं भाग कर दवाई लेने गया । दवाई लेकर जब पैसे देने के लिए जेब में हाथ डाला तो जाना कि पैसे तो काफी कम हैं । मैंने मिन्नतें की पर केमिस्ट तो धंधा कर रहा था । मेरे हाथ पैर ठंडे पड़ गए । मैं सोच ही रहा था कि वहाँ पर आलोक आया। उसने एक तरकीब लगाई । उसने कहाँ की भाई तुम यहाँ पर रुको, मैं दवाई लेकर जाता हूँ और

पैसे का इंतजाम कर के वापस आता हूँ।

रोक्सी : मैं चुपचाप वहाँ गिरवी हो गया और उस दुकान के कोने में जाकर बैठ गया । मैं सोचने लगा कि वहाँ हॉस्पीटल में क्या हो रहा होगा । क्या आलोक दवाई लेकर पहोंच गया होगा । क्या उमेश वहाँ आ गया होगा। अरे मम्मी को कोई सँभाल रहा होगा या नहीं । मैं ये सब सोच रहा था कि इतने में दक्षिण वहाँ आया ओर उसने कहा कि पापा मर गए हैं। मर गए पापा...

आलोक : पापा मर गए और उसी दिन मेरा गुजराती नाटक का जयशंकर सुंदरी हॉल में शो था । (नाटक के हॉल का फॉर्म बनता है। माओ न घावल हुकाइ गया । मारा बापला ने अमारा छोकरा मरवा पड्या छे। वोह गाम दुरथी अवाजो भई ने आव्यो छुं । इ अवाजो सांभलो मारा साहोबो । माओना मुंझारा अने बालकोनी भूखोनो अवाज हुका मां जोलनो टकरायानो टैम..... टैम आवज पथ्थर जेवो फूंक गला नीचे उतरे अनो गटक ..... गटक ..... आवज हुका क्षेत्रामां भेंकार वायरानो सुं...... अवाज । आ आंघाय अवाजो हांभलो मारा साहेबो । इ हांबलवानी जवाबदारी शे । एक वार आवो मारा गामा मा अने जुवो अमारा क्षेत्रमां गयो ना पाशला पड्या शे । अने चाडीया गीधडा जवान बुढ्ढा,...बालक बधा एक ज उमरना थइ गया ऐ...मरवानी उंमरना अरे उंचा हाद दोहा गाता अमारा गलाओ मां हवे मरशीया गावानी हाम नथी रहीं। अमने तरस लागी छे तरस, और उसके बाद जैसे ही पापा को घर पे लाया तो पापा के मरने के बाद बार काउन्सिलवालों ने पचास हज़ार रुपए का चेक दिया और जैसे ही वो चेक बैंक से क्लीयर हुआ की कर्जदार वो पैसे लेकर चले गए। (आलोक रोते-रोते नीचे गिर जाता है। सभी कलाकार रोने लगते हैं।)

(वॉइस ओवर) बूधन थिएटर के कलाकारों को अक्सर एक सवाल पूछा जाता है की नाटक ने उन्हें क्या दिया? नाटक ने उन्हें जो दिया वह शायद इस देश का संविधान भी उन्हें नहीं दे पाया और वह है 'सम्मान से जीने का अधिकार'(वॉइस ओवर पूरा होते ही रवीन्द्रनाथ टेगौर का बंगाली गीत शुरू होता है।)

v v v